धन्वन्तरि

वनौषधि विशेषांक

प्रथम–भाग

अ से औ तक की सम्पूर्ण वनस्पतियों का सचित्र विस्तृत वर्णन
एवं विभिन्न रोगों पर हजारों सरल सफल प्रयोगों का उपयोगी संग्रह

लेखक

आयुर्वेदक सूरि स्व० श्री पं० कृष्ण प्रसाद जी त्रिवेदी
बी०ए० आयुर्वेदाचार्य

सम्पादक

वैद्य देवीशरण गर्ग
ज्वाला प्रसाद अग्रवाल, बी.एस.-सी
दाऊदयाल गर्ग, ए.एम.बी.एस.

प्रकाशक : श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, अलीगढ़

वनौषधि विशेषांक की विषयानुक्रमणिका

अकरकरा	25	अन्तमूल	133	अलेठी	223
अकमेहन्दी	31	अन्धाहुली	135	अशोक	223
अकलबेर	31	अपराजिता	137	नकली अशोक	229
अखरोट	32	अपामार्ग	139	असगंध	230
अगमकी	35	अफसन्तीन	143	आक	235
अगर	36	अफीम	147	आकाहुली	266
अगस्तिया	40	अमरकन्द	164	आकाशनीम	266
अगिया (अगिन)	44	अमरबेल	166	आठिला	267
अग्नियूम	46	अमरबेल नं. 1	166	आगनाद	267
अंकोल	46	अमरबेल नं. 2	167	आडू	267
अंगन	51	अमरबेल नं. 3	167	आतजौ	269
अंगस्तूरा छाल	52	अमरबेल नं. 4	168	आतरीलाल	270
अंगूर	52	अमरूद	170	आबनूस	271
अंगूर शेफा	58	अमरफल	174	आम्र	272
अजगंधा	59	अमरुफल	175	आमगुल	293
अजगरी	60	अमलतास	175	आमटी	293
अजमोद	60	अमलबेत	185	आमपीच	294
अजरूहा	63	अमरोला	188	आमला	295
अजवायन	63	अमसानिया	189	आमाहल्दी	313
अजवायन (देशी)	63	अम्बाड़ा	190	आम्रगंधा	316
अजवायन खुरासानी	69	अयार	191	आम्रगंधक	316
अजवायन किरमाणी	73	अरनी	191	आयापान	317
अजवायन जंगली (1)	75	अरलू नं. 1	197	आरक और आरक ज्वार	320
अजवायन जंगली (2)	75	अरलू नं. 2 छोटा (श्योनाक)	200	आराम शीतला	320
अजोमूत	76	अरस बूटी	200	आरी	320
अन्जनी	76	अरहर	201	आल नं. 1	322
अन्जीर	78	अरारोट	203	आल नं. 2	324
अन्जीरी	82	अरिमेद	205	आलू	325
अन्जुबार	82	अरुआर	207	आलूचा	328
अडूसा	83	अरुवा	207	आलू बालू	330
अण्ड खरबूजा	93	अखोर	208	आलूबालू विलायती	332
अतीस	97	अर्जुन	208	आलू बोखारा	333
अदरख	103	अलर्क	215	आशफल	335
अनन्तमूल	109	अलसी	216	आसन नं. 1	336
अनन्नास	118	असली विरेचक	221	आसन नं. 2	338
अनार	122	अलियार	222	आसाम का रबड़ वृक्ष	339
अनासफल	132	अल्ली पल्ली	222	आस्सेओड़ा	339

आंचू 339
आँजन 340
इन्द्रायण (बड़ी) 340
इन्द्रायण (छोटी) 350
इन्द्रायण (लाल) 354
इन्द्रायण कांटेदार 357
इपिकेक्वाना 359
इमली 363
इलायची छोटी 371
इलायची बड़ी 376
इलायची दाना 379
इश्कपेचा 379
इसबगोल 380
इसरमूल 387
इसरौल 393
इस्पस्त 394
ईख 395
ईरसा 404
उंटगन 406
उटिंगड 408
उड़द 408
उतजर 413
उतरन 414
उदरपुंच्छी 418
उन्नाव 419
उपास वृक्ष 421
उफीमूनस 422
उमरी 422
उम्बी 422
उलटकम्बल 423
उशक 425
उशधन 428
उस्तोखुद्दूस 428
ऊदसलीव 431
ऊंटकटारा 433
ऋद्धि व वृद्धि 437
ऋषभक व जीवक 438
एकवीर 441
एरक 442
एलुवा 444
ओखराडी 444
ओटफल 446
ओटधान्य 447
औधफली 448

स्वप्नजनन (Hypnotic, Soprofic)

औषधि जो प्रारम्भ में बगैर मद को पैदा किये निद्रा लावे, जैसे– पिपलामूल, भाँग, काहू, जायफल, कुचला आदि।

स्वापजनन (Anaesthetics)

औषधि जो मस्तिष्क और कसेरु रज्जु के केन्द्र स्थानों (Spinal centres) पर अपनी क्रिया कर बेहोशी (संज्ञानाश) और बधिरता पैदा करे, जैसे कोका का क्षार (कोकेन), क्लोरोफार्म आदि।

इनमें कुछ ऐसी भी होती हैं, जिन्हें त्वचा या वेदना – युक्त व्रण आदि पर लगा देने से, उस स्थान पर शून्यता हो जाती है। जैसे– बच, जटामांसी, इरिमेद, तगर, कटुकी, बर्फ आदि।

स्वेदन (Diaphoretic Sudorific)

औषधि जिसके प्रयोग से पसीना निकले, जैसे–शोभांजन, एरण्ड, अर्क, वृश्चीर, पुनर्नवा, यव, तिल, कुलथी, उड़द, बदर, एपिकाकुआना आदि।

स्वेदापनयन (Anhydrotics)

औषधि जो प्रस्वेद या अत्यन्त पसीने को बन्द करे, जैसे– बेलाडोना, अजवायन, खुरासनी काकमारी आदि।

हृदयोत्तेजक (Cardial)

औषधि जो रक्ताभिसरण की गति को बढ़ावे। यह प्रायः सुगन्धित और उष्ण होती है। जैसे– छोटी इलायची, हींग, तुलसी, कचूर, पोंहकरमूल आदि।

क्षार (Alkalie Antacids)

औषधि जो शरीरान्तर्गत् अम्ल रस को बढ़ावे तथा क्षार को कम करे, जैसे– यवक्षार, सर्जिकाक्षार, आदि।

-पारिभाषिक शब्दों में से महत्वपूर्ण शब्द यहाँ दिये गये हैं।

-श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी०ए०, आयुर्वेदाचार्य

अकरकरा (Anacyclus Pyrethrum)

विशेष वक्तव्य-

यद्यपि आयुर्वेदिक के चरक सुश्रुतादि प्राचीन ग्रन्थों में इस बूटी का उल्लेख नहीं है, तथापि यह नहीं माना जा सकता कि यह बूटी भारतवर्ष में पहले नहीं होती थी, और पीछे से यूनान वालों द्वारा इसे यहाँ लाया गया। इसकी अपेक्षा उत्तमोत्तम कई अन्यान्य बूटियाँ यहाँ थीं जिनके सामने यह कोई चीज नहीं थी इसीसे शायद चरक, सुश्रुतादि महर्षियों ने इसकी उपेक्षा की हो, अथवा इसके प्राचीन और आधुनिक नामों में कुछ गड़बड़ी हो गई हो।

अनेक भाषा के नाम-

संस्कृत– आकारकरभ, अकल्लक, आकरकरा, तीक्ष्णमूल, लक्ष्णकीलकादि।
हिन्दी– अकरकरा, अकलकरहा।
मराठी– आक्कलकाला, अक्कलकारा।
गुजराथी–अक्कलकरो।
तामिल– अक्किरकारम्।
लेटिन– एनासाइक्लर्स पारीथ्रम (Anacyclus pyrethrum) पाइरीथ्रम रैडिक्स (Pyrethrum Radix)
अंग्रेजी– पेलिटरी रूट (Pellitory root)

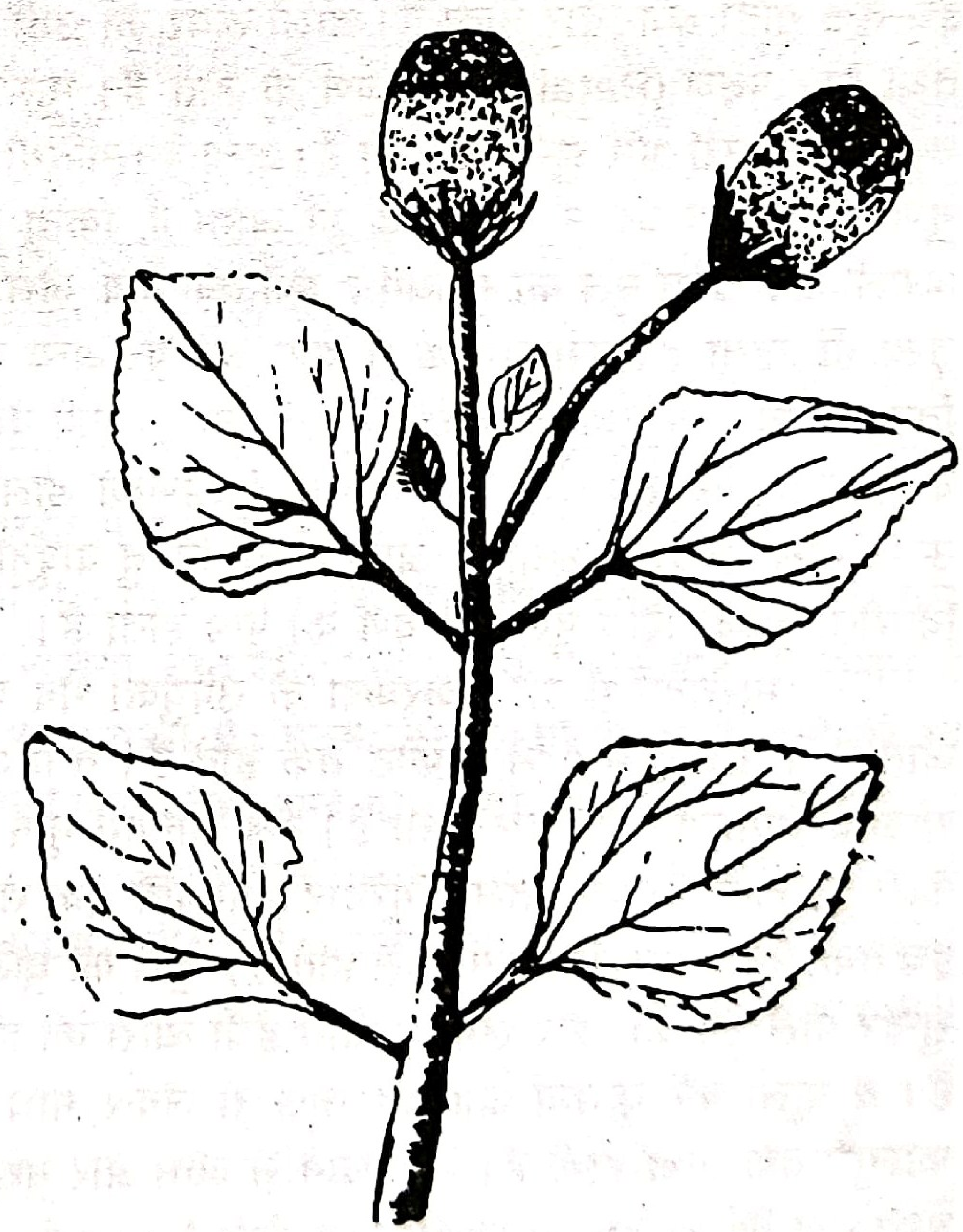

अकरकरा

उत्पत्ति स्थान- असली अकरकरा उत्तरी अफीका, अरब, अल्जीरिया, लीवाण्ट आदि प्रदेशों में होता है। तथा बहुत ही कम प्रमाण में बंगाल के कुछ हिस्सों में, आबू के पर्वतीय प्रदेशों में, तथा गुजराथ, महाराष्ट्र आदि भारतवर्ष के कतिपय प्रान्तों की उपजाऊ भूमि में पाया जाता है।

नोट- भारतवर्ष में पाई जाने वाली यह बनौषधि प्रायः दो प्रकार की हाती है। एक तो वह है जिसे बोजीदाना या मधुर छोटा अकरकरा, लेटिन में Spilanthus Acmella कहते हैं।

और दूसरी को बड़ा अकरकरा, उकरा, पोकरमूल तथा मरेठी भाषा में आचार बोंड़ी या पिपुलक लेटिन में Spilanthus Oleraceae कहते हैं।

ये प्रायः एक हाथ ऊँचे होते हैं। पत्ते कुछ लम्बे तथा पुष्प कुछ सफेदी लिये पीत लाल वर्ण के घुंडीदार होते है। इनके पुष्प ही में असली अकरकरा मूल के प्रायः सब गुणधर्म पाये जाते हैं। अतः प्रायः पुष्प भी औषधि कार्य में लिये जाते हैं। असली अकरकरा के अभाव में इनसे ही कार्य लिया जाता है। इनके पुष्पों का टिंचर या आसव अग्निदीपक, लालास्रावक, जिव्हा और दन्त विकार नाशक, तथा शूल शोथ कफ आदि विकार नाशक है।

विवरण- इसके छोटे छोटे क्षुप वर्षा ऋतु के आरम्भ काल में ही उत्पन्न हो जाते हैं। शाखायें, पत्र और पुष्प सफेद बाबूना के समान ही होते हैं। किन्तु इनके डण्ठल कुछ पोले होते हैं। तना और शाखायें रूएँदार। ये शाखायें एक तने या डाली में से निकाल कर कई हो जाती है। तथा जड़ में एक प्रकार की सुगन्ध होती है। मूल दो इंच तक लम्बी और आधे से पौन इंच तक मोटी बजनदार होती हैं। डाली ऊपर को उठी हुई तथा पुष्प पटल (Petals) श्वेत वर्ण के होते हैं। मूल की छाल मोटी, भूरी और झुर्रीदार होती है। अन्य बनस्पतियों का गुणधर्म तो एक वर्ष में नष्ट प्रायः हो जाता है, किन्तु इस असली अकरकरा मूल का गुणधर्म 7 वर्षों तक प्रायः जैसे कि तैसा ही रहता है। इसको मुख में चबा लेने पर अन्य कटु तिक्त आदि औषधियों का कुछ भी स्वाद मालूम नहीं देता। वे सरलतापूर्वक सेवन की जा सकती हैं। इसकी डाल के ऊपर गोल गुच्छेदार छत्री के आकार का, किन्तु बाबूना से विपरीत सफेदी लिये हुए पीत वर्ण का पुष्प होता है।

भारतवर्ष में जो अकरकरा के उपर्युक्त भेद पाये जाते हैं वे ऊँचाई में 2 से 4 फीट तक होते हैं। तना और शाखायें सामान्यतः रूएँदार होती हैं। कई शाखायें भूमि पर फैली हुई होती हैं। पत्र पतले कंगूरेदार विषमवर्ति, एक से दो इंच तक लम्बे, तथा तीन नसों वाले होते हैं। फूलों की घुंडियाँ सुन्दर पीले रंग की, और लगभग आध इंची व्यास की होती हैं। ये फूलों की घुंडियां आश्विन मास से लेकर माघ या फाल्गुन तक प्राप्त होती हैं। इन्हें खाने से जीभ और मुख में बहुत तेज विचित्र ढंग की चिरमिराहट होती है। इनकी जड़ों में सुगन्ध नहीं आती। यह असली अकरकरा की अपेक्षा कुछ न्यून गुण वाली होती हैं। बाजारों में ये सब असली अकरकरा के साथ मिलाकर बेचते हैं।

असली और नकली अकरकरा के भेद – असली अकरकरा भारी (वजनदार) और तोड़ने पर भीतर से सफेद होती है। इसमें अत्यधिक तेजी होती है। इसको चबाने से मुख और जीभ में बहुत तेज और एक विचित्र ढंग की सनसनाहट होने लगती है। तथा मुंह से मीठी मीठी लार छूटने लग जाती है, कुछ काल के बाद सनसनाहट मिटकर मुंह स्वस्थ और साफ हो जाता है। अर्थात् इसका प्रभाव देर तक रहता है।

नकली वजन में हलकी, तोड़ने पर अन्दर कुछ पीला या भूरापन लिये होती है। इसकी झनझनाहट कम और थोड़ी देर तक होती है।

रासायनिक विश्लेषण—से मालूम हुआ है कि इसमें (1) स्फटिक के समान अल्कलाइड पायरेथ्रिन (Alkaloid Pyrethrine) नामक एक क्षारीय सत्व होता है, जो कि मद्य में विलयनशील होता है, तथा (2) रेजिन या राल सदृश एक सत्व होता है, जो कि मद्य में विलयनशील होता है, और (3) दो प्रकार के स्थायी एवं उड़नशील पीले रंग के सुगन्धित तैल होते हैं। ये सब वस्तुएं प्रदाहजनक, लार निस्सारक, मज्जातन्तुओं को बलदायक, कामोत्तेजक और वातनाशक हैं।

गुणधर्म-

तिक्त, स्वाद, कषैला, किंचित् कटु, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, बलकारक, प्रतिश्याय (जुखाम), शोथ और वातनाशक है तथा वेदनास्थापक, लालोत्पादक एवं कफघ्न गुण की विशेषता है। इसमें उत्तेजक गुण काफी प्रमाण में होने से आयुर्वेद ने इसे कामोत्तेजक औषधियों में प्रधानता दी है। इसे समान गुणशील अन्यान्य औषधियों के साथ प्रयोजित करने से यह वीर्यवर्धन, स्तम्भन एवं कामोत्तेजन में अद्भुत लाभ पहुँचाती है। किन्तु इसका विशेष लाभ शीत या कफ प्रकृति वालों को ही होता है।

आयुर्वेद में इसका उपयोग लगभग 400 वर्षों से हो रहा है। सड़े हुए दाँतों की वेदना निवारणार्थ इसका उत्तम उपयोग होता है। जिव्हा और कण्ठ के आघात में आवाज खुलने और मुंह में गीलापन होकर शिथिलता कम होने के लिये इसे मुख में धारण कराते हैं।

मुख्य प्रयोग -

(1) कामोत्तेजनार्थ, वीर्यवर्धनार्थ-

अकरकरा 2 भाग, असगंध (नागौरी), तुलसी के बीज और करंजमूलत्वक – 1–1 भाग लेकर सबका महीन चूर्ण करें। मात्रा 1 से 3 माशे तक, प्रातः सायं मिश्री युक्त धारोष्ण गौदुग्ध (अथवा पकाये हुए सुखोष्ण दुग्ध) के साथ सेवन कराने से वीर्यवर्धन और स्तम्भन होता है। अथवा–

भैषज्य रत्नावली की "आकरकरभादि वटी" का योग (जिसमें अकरकरा, सौंठ, लौंग, केशर, पिप्पली, जायफल, जावित्री

और चन्दन 1–1 भाग, शुद्ध हिंगुल और गंधक 1/4 भाग तथा अफीम 4 भाग है।. सबको एकत्र कर भांग के स्वरस (या क्वाथ) की भावना देकर गोलियाँ बनाते हैं। मात्रा 2 से 6 यव की है। नपुंसकता, ग्रहणी, अतिपार्श्वशूल पर उत्तम है।

नोट-कोई कोई इसमें लौंग के स्थान में शीतल मिरच, अफीम 4 भाग के स्थान में 1/2 भाग लेते हैं। हिंगुल और गंधक नहीं लेते, तथा भाँग के स्थान में पान (ताम्बुल) के रस में 6 घण्टे खरल कर 2–2 रत्ती की गोलियाँ बनाते हैं। इसकी 1 या 2 गोलियाँ रात्रि के समय मिश्री मिले दूध के साथ सेवन करने से काफी कामोत्तेजना, वीर्य गाढ़ा, तथा मानसिक प्रसन्नता होती है। ध्यान रहे इन अफीम युक्त प्रयोगों का सेवन अधिक दिनों तक नहीं करना चाहिए अन्यथा लाभ के स्थान में हानि की संभावना है। यदि कोष्ठबद्ध हो जाय तो एरण्ड तैल द्वारा उदर शुद्धि कर लें।

शिश्न पर बाह्य प्रयोग-

अकरकरा का महीन चूर्ण लगभग 2 तोले प्रति रात्रि को धतूरे के स्वरस में घोटकर टिकिया बना शिश्न की ऊंपर की सतह पर, अग्रभाग छोड़ कर बाँधने से, 7 या 8 दिनों में वह पुष्ट होकर स्तम्भन शक्ति बढ़ती है, तथा नपुसंकता दूर होती है। उक्त अकरकरा की लुगदी पर पत्ता भी धतूरे का ही बाँधना चाहिए, और जल से शिश्न को बचाना चाहिए। अथवा–

अकरकरा 5 तोला को जबकुट कर 16 गुने जल के साथ चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, उसमें क्वाथ्य जल से आधा मालकांगनी का तेल मिला मन्दाग्नि पर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर शीशी में सुरक्षित रक्खें। इसकी शिश्न पर मालिश करने से उसकी शिथिलता, जो नस की खराबी से हुई है अवश्य दूर हो जाती है।

अकरकरा के महीन चूर्ण को शहद के साथ लेप करने से भी इन्द्रिय–शैथिल्य दूर हो जाता है। अथवा–

अकरकरा, पिप्पली, चित्रकमूल की छाल, और धतूरे के बीज 7–7 माशे, इन्द्रगोप (बीरबहूटी) जुन्दवेदस्तर 2–2 माशे, जायफल, दालचीनी 1½–1½ माशा और केशर 4 रत्ती, सबका महीन चूर्ण कर शहद के साथ घोटकर 1 गोली, या कई गोलियां बना रक्खें। इसे मद्य या शराब में घिसकर शिश्न पर लेप करने से बाजीकरण एवं वीर्य स्तम्भन होता है।

नोट- उक्त बाह्य प्रयोगों के साथ ही साथ उक्त आकरकरभादि चूर्ण या वटी का सेवन अवश्य होना चाहिए, और पथ्य परहेज से रहना चाहिए।

(2) बाल रोग और जिव्हा विकार आदि पर-

(अ) अकरकरा 4 भाग, जायफल 3 भाग, लौंग, पीपलामूल और केसर 2–2 भाग, दालचीनी 3 भाग, अफीम 1 भाग, भाँग और मुलेठी 4–4 भाग और शहद 5 भाग, सबके चूर्ण को शहद के साथ तथा थोड़ा जल मिलाकर खूब घोटना चाहिए और छोटी छोटी गोलियाँ बना रक्खें। मात्रा – आधी रत्ती से 2।। रत्ती तक सेवन कराने से बच्चों का चिड़चिड़ापन,अनिद्रा, दाँत निकलने के समय की पीड़ा, अतिसार, उदरशूल, वमन आदि विकार शीघ्र दूर होते हैं। अथवा–

(आ) अकरकरा 2 भाग तथा इन्द्रयव (मीठा), सौंठ, जीरा और पीली कौड़ी की भस्म 1–1 भाग लेकर सबका महीन चूर्ण एकत्र कर शीशी में भर कर रक्खें। मात्रा– बच्चों को 4 रत्ती से 1 माशा तक और बड़ों को 2 माशे से 4 माशे तक, दिन में 2 या 3 बार योग्य अनुपान के साथ या केवल उष्णोदक के साथ देने से यकृत् विकार, उदरशूल, अतिसार, संग्रहणी आदि विकार नष्ट हो जाते हैं।

(इ) बालकों के अपस्मार पर- अकरकरा को डोरे से बांधकर गले में लटका देना चाहिए। अथवा इकरंगे काले कुत्ते के बाल और अकरकरा दोनों को बालक के गले में बाँध देने से उसकी हड्डियों में चेतन्यता तथा आमाशय के रोग और ज्वर दूर होते हैं।

(ई) जिव्हा जाड्य - बालकों की जीभ किसी कारणवश मोटी हो जाने से उच्चारण ठीक नहीं होता ऐसी अवस्था में इसका 2–2 रत्ती चूर्ण शहद के साथ मिलाकर दिन में 2 या 3 बार जिव्हा पर लेप करने से तुतलापन, मुख का सूखना, दाँत और दाढ़ का दर्द और गले की सूजन में भी लाभ होता है। मनुष्य की जिव्हा सुन्न हो जाने पर भी इसका लेप, क्वाथ आदि का किसी रूप से प्रयोग लाभप्रद है।

(उ) जिव्हा विकार एवं मुखमाधुर्य पर - इसे मुख में रखकर धीरे धीरे चबावें और लार टपकाते जावें अथवा शीतल जल में इसे घिसकर जिव्हा पर लेप करें। और लार को बाहर बहने दें। इस प्रकार दिन में 2 या 3 बार करने से जिव्हा की शुद्धि होकर पूर्ण लाभ होता है।

(ऊ) मुख दुर्गन्धनाशार्थ- अकरकरा का महीन चूर्ण कर 2 से 4 रत्ती तक समभाग मिश्री का चूर्ण मिलाकर दिन में 4 या 5 बार मुख में डालने से मुख की दुर्गन्ध दूर हो जाती है।

(3) ज्वर, कफ प्रकोप, प्रतिश्याय, कास श्वास पर-

(अ) इसका महीन चूर्ण जैतून के तेल (Olive oil) में मिला और गरम कर ज्वर चढ़ने के पूर्व समस्त शरीर में

मालिश करने से ज्वर एवं सर्दी का लगना दूर होता है। चढ़े हुए ज्वर में इसकी मालिश करने से पसीना आकर ज्वर छूट जाता है। इसकी मालिश से संधियों की वेदना आदि शिकायतें दूर हो जाती हैं।

(आ) अकरकरादि क्वाथ- अकरकरा के समभाग चिरायता, गिलोय, कटुकी, करंज की छाल और नीम की छाल लेकर जौकुट चूर्ण बनावें। 1 तोला चूर्ण में 20 तोला जल मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें।

मात्रा- बालकों को 1 चम्मच से 2 चम्मच तक, शहद मिला सेवन करावें। बड़ों को 1½ तोले से 2½ तोले तक। इस क्वाथ का मलेरिया (शीतज्वर), वातश्लेष्म ज्वर (इन्फ्ल्युएन्जा), विषम ज्वर, प्रतिश्याय और कास पर अचूक प्रभाव पड़ता है। इसका प्रयोग ज्वर प्रतिकारार्थ तथा ज्वर शमनार्थ किया जाता है।

(इ) सन्निपात ज्वर में संज्ञानाश (बेहोशी) या शरीर की शिथिलता का आभास होते ही अकरकरा का फॉंट बनाकर देने से मुख्यतः हृदय में स्फूर्ति पैदा हो, शिथिलता और बेहोशी नहीं होने पाती। यदि तन्द्रा और जड़ता की विशेषता हो तो इसके क्वाथ में अदरख का रस या सोंठ का चूर्ण और थोड़ा सा कुलिंजन (सुगन्ध बच) का चूर्ण मिलाकर सेवन करावें।

(ई) कफ प्रकोप या सर्दी की वाधा जोर पर हो- तो इसके अवलेह में शहद मिला सेवन कराने से सर्दी के विकार, छाती का दर्द, कफ की पुरानी खाँसी दूर होती है। तथा देह की कांति बढ़ती है। अथवा इसका एक छोटा टुकड़ा या चूर्ण 4 रत्ती तक पान के बीड़े में रखकर खिलावें तथा इसके गरम काढ़े को सिर पर लेप करें और उसे तालू पर मलें। इससे नजला में भी लाभ होता है।

(उ) खाँसी की विशेषता हो तो - इसके महीन चूर्ण 4 रत्ती में समभाग मिश्री मिला उष्णोदक से दिन में 2 या 3 बार सेवन करावें। अथवा इसका चूर्ण 1 तोला और मुलैठी चूर्ण 1 तोला दोनों को एकत्र कर शहद के साथ खरल कर 2–2 माशे की गोलियां बना रक्खें। खाँसी के दौरे के समय दिन या रात में इन गोलियों को चूसने से खाँसी बन्द हो जाती है। कुछ दिन इसी प्रकार सेवन करते रहने से सभी प्रकार की वातज और कफज कास नष्ट हो जाती है। अथवा इसके केवल क्वाथ के सेवन से भी अपूर्व लाभ होता है। अकरकरा का पंचांग (अभाव में केवल मूल) 5 तोले जौ–कुट कर 40 तोले जल मे क्वाथ विधि से पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर शीशी में भर कर रक्खें। मात्रा– बड़ों को 2½ तोले तक, बच्चों को 1 या 2 चाय के चम्मच तक दें।

अनुपान में क्वाथ की मात्रा से चौथाई शहद मिला, प्रातः सायं या दौरे के समय सेवन कराने से श्वास सहित कास भी दूर हो जाता है।

इसके महीन चूर्ण को सुंघाने से नाक बंध जाने से पैदा हुआ श्वासावरोध दूर हो जाता है।

(ऊ) कफ या कफ वात के कारण सिर दर्द हो तो इसके महीन चूर्ण 4 रत्ती को बादाम के हलुवे के साथ प्रातः सायं सेवन कराने से निरन्तर एक समान बना रहने बाला सिर दर्द दूर हो जाता है। ऐसी दशा में इसके चूर्ण की नस्य भी साथ ही साथ देनी चाहिए।

यदि आधासीसी का दर्द हो, तो इसकी लकड़ी को छील कर जिस ओर दर्द हो उस ओर की दाढ़ में दबाकर धीरे–धीरे चबाने से तत्काल शान्ति प्राप्त होती है।

(4) दांत और डाढ़ों के रोग पर -

(अ) यदि बादी के कारण डाढ़ या मुसुकुर (मसूढ़े फूल गये हों) और दर्द से बेचैनी हो तो नया अकरकरा लाकर उसके छोटे–छोटे टुकड़े कर 2–4 टुकड़े मुंह में दर्द के स्थान पर दबावें और पानी थूकते रहें, इससे दन्त पीड़ा बहुत जल्द दूर होती है। अथवा –

इसे सिरके में भिगोकर दांतों के नीचे दबाने से या इसको कटसरैया के पत्तों के साथ कूटकर दांतों तले दबाने से या इसके साथ कालीमिर्च, पीपल, छोटी इलायची के दाने और माजूफल समभाग ले एकत्र कर महीन चूर्ण में से दो रत्ती चूर्ण दांत और डाढ़ में मलने से तथा दांत की खोखल में भर देने से दंत–पीड़ा शान्त हो जाती है। अथवा –

इसके कुनकुने क्वाथ का कवल (गंडूष) धारण करने से दांत और मसूढ़ों की पीड़ा शान्त होकर , मुख और कण्ठ का प्रदाह, गल ग्रन्थि शोथ, स्वरभंग आदि रोग भी दूर हो जाते हैं। अथवा –

इसके महीन चूर्ण के साथ पिपरमेंट और कोकीन समभाग (प्रत्येक 1–1 माशा), अफीम 4 माशे तथा गोंद बबूल 6 माशे, लेकर सबको एकत्र कर उसमें थोड़ा जल मिला शीशी में भर कर रक्खें। इसमें रुई की फुरेरी भिगोकर मसूड़ों पर लगाने से तत्काल दन्त पीड़ा शान्त हो जाती है।

(आ) दंत कृमि पर -

दांतों में कीड़े लगकर वहां के मसूड़े खोखले हो गये हों तो उन छेदों में इसका महीन चूर्ण भर देने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

दन्त कृमि जन्य पीड़ा (कीड़े खाये हुये दांत की

पीड़ा) तत्काल दूर करने के लिये इसका महीन चूर्ण नवसादर, और अफीन 1–1 रत्ती तक कर्पूर अर्ध रत्ती एकत्र मिला कीड़े खाये हुए गड्डे में भर देना चाहिए। अथवा –

इसके चूर्ण को सिरके के साथ पकावें, जब वह खमीर के सदृश हो हो जाय तो इसे कीड़े के खाये हुए दांतों के ऊपर रखने से सब कीड़े झरके गिर पड़ते हैं। अथवा – इसका टिंचर [1] भी उत्तम लाभकारी है।

(इ) दन्तरोगहरण गण्डूष और मंजंन -

अकरकरा, अनार के फूल, फिटकरी, नागरमोधा, वायविडंग, जटामांसी और माजूफल 1–1 माशा, तथा खुरासानी अजवायन 3 माशे और पुनः अकरकरा 3 माशे (अकरकरा चूर्ण कुल 4 माशे लेकर आधा सेर जल में क्वाथ करें। तृतीयांश शेष रहने पर, इसके सुखोष्ण जल से कुल्ले करने से दन्त पीड़ा, दांतों का हिलना, मसूड़ों में रक्तस्राव होना आदि विकार शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

मंजन - इसके दो भाग महीन चूर्ण के साथ 1–1 भाग अनार का फूल, नागरमोंथा ,बच, माजूफल, खदिर (कत्था), सुहागा, सेलखड़ी, छोटी इलायची का महीन चूर्ण तथा अर्ध–अर्ध भाग फिटकरी, श्वेत मिर्च, समुद्रफेन शुक्ति भस्म, रूमीमस्तंगी, कपूर, सबका महीन चूर्ण एकत्र कर रक्खें। नित्य प्रातः इसका मंजन कर गर्म जल से कुल्ला करने से सब प्रकार के दन्त रोग नष्ट होते हैं। पान खाने से परहेज रखना चाहिए। अथवा –

इसका महीन चूर्ण 2 तोला, त्रिफला 1 तोला, मुलैठी 6 माशे, सोंठ 3 माशे, लौंग 1½ माशे, इलायची 6 रत्ती, कपूर 3 रत्ती, तुत्थ भस्म 1 रत्ती और पिपरमेंट सत्वं 6 चावल, लेकर सबके महीन चूर्ण का मिश्रण बना रक्खें। प्रातः भोजन के पूर्व, तथा भोजन के बाद सोते समय इसका मंजन करने से दन्तकृमि, दन्तपीड़ा, दन्तहर्ष, दन्तवेष्ट, दन्तपूय पायोरिया, दन्त पुप्पुट, मुंह के छाले आदि दूर होकर दांत मजबूत और स्वच्छ रहते हैं।

(5) अपस्मार पर -

(अ) अपस्मार या मृगी के रोगी को फिट आये तब इसके महीन चूर्ण को उसकी नाक के अन्दर फूंकना चाहिए। यदि रोगी को छींक आ जाय तो समझना होगा कि रोग साध्य है। और इसके चूर्ण को मस्तंगी या अन्य कसैली वस्तुओं के साथ मिलाकर तथा उसमें शहद मिलाकर दिन में 3 बार चटावें, तो दूषित दोषों से प्रकट हुआ अपस्मार दूर हो जाता है। साथ ही साथ इसके चूर्ण का नस्य भी देते रहें।

इसके चूर्ण को शंखपुष्पी के चूर्ण के साथ भी देने से लाभ होता है। अथवा –

(आ) इसका चूर्ण 2 भाग, चित्रक, आंवला, अजवायन, हरड़ और सैंधानमक 1–1 भाग, और सौंठ 2 भाग, इनका महीन चूर्ण कर बिजौरा नीबू के रस की भावना देकर सुरक्षित रक्खें। प्रातः सायं 1 से 3 माशे चूर्ण शहद के साथ सेवन करने से मृगी, पीनस, उन्माद, श्वास, मंदाग्नि, अरुचि आदि विकार दूर होते हैं।

बालकों के अपस्मार पर -

इसका महीन चूर्ण (मात्रा 1 से 2 रत्ती) शहद के साथ प्रातः सायं चटावें।

नस्य प्रयोग - इसका चूर्ण तथा काली मिर्च और कुटकी का चूर्ण प्रत्येक 1–1 तोला, इन्द्रायण की जड़ और स्याह जीरा 6–6 माशे तथा नौसादर 9 माशे, इन सबका महीन चूर्ण एकत्र खरल कर शीशी में भर कर रक्खें। प्रातःसायं इसकी नस्य देने से संचित दोष दूर होकर मृगी नष्ट हो जाती है।

(6) वात रोगों पर -

(अ) **अकरकरादि गुग्गुल -** अकरकरा का महीन चूर्ण 8 तोले, असगन्ध और सोंठ चूर्ण 2।।–2।। तोले, शुद्ध गुग्गुल 10 तोला तथा एरण्ड मूल का चतुर्थांश क्वाथ 1 सेर लेकर प्रथम क्वाथ में गुग्गुल मिलाकर कलईदार पीतल की कढ़ाई में पकावें। जब शहद जैसा गाढ़ा हो जाय तब उसमें शेष औषधियों का महीन चूर्ण धीरे–धीरे बुरकते हुए करछली से चलाते जायं। जब सब मिलकर अवलेह के समान हो जाय तो थोड़ा घृत मिलाकर सबको लोह खरल में डाल खूब कुटाई करें और 2–2 माशे की गोलियां बनालें। दिन में 2 या 3 बार 1–1 गोली एरण्ड मूल क्वाथ के साथ अथवा सुखोष्ण दुग्ध के साथ सेवन करने से खंजता, पंगुता, कुब्जता, जिव्हास्तम्भ, मन्यास्तम्भ, पक्षाघात, सन्धिवात, कम्पवात, आदि वात रोग दूर हो जाते हैं। हिस्टेरिया तथा हृदय की अत्यधिक धड़कनं पर भी यह लाभदायक है।

(आ) गृध्रसी (Sciatica-सियाटिका) पर – इसके महीन चूर्ण को अखरोट के तैल में मिला मालिश करने से लाभ होता है।

शरीर में सुन्नत या झुनझुनाहट हो तो इसे लौंग के साथ मालिश करें। अथवा –

इसके चूर्ण को चन्दन तेल के साथ पीसकर मर्दन करने से सुन्नवात, ढीलापन, तथा मस्तिष्क, सन्धि, मुख और छाती की वात या स्नायु सम्बन्धी पीड़ा दूर हो जाती है।

(इ) वात प्रकोप के कारण सिर में चक्कर आते हों। विकृत निद्रा या अतिनिद्रा हो तो इसे केवल मुख में रखकर चूसते रहने से ही लाभ होता है सम्पूर्ण शरीर में यदि पीड़ा हो तो इसके चूर्ण को पीपलामूल के क्वाथ के साथ सेवन कराने से शीघ्र ही लाभ होता है।

(7) रक्तदोष, उपदंश और श्वेत कुष्ठ पर-

(अ) इसका चूर्ण और आक की जड़ का चूर्ण 1–1 भाग, काली मिर्च 2 भाग और मिश्री 4 भाग। इन चारों का महीन चूर्ण एकत्र खरल कर रक्खें। प्रातः सायं ताजे जल के साथ इसकी मात्रा 2 से 4 माशे तक सेवन कराने से कण्डु, उपदंश तथा अन्यान्य रक्तदोषों पर उत्तम लाभ होता है।

(आ) उपदंश या फिरंग रोग उग्ररूप में हो तो- इसका चूर्ण 1 तोला, खदिर चूर्ण (या श्वेत असली कत्था) और शुद्ध पारा 6 माशे, इन तीनों को खरल में एकत्र कर 1½ तोला शहद के साथ खूब घोटना चाहिए। और कुल 7 गोलियाँ बना लेवें। नित्य प्रातः 1 गोली जल के साथ सेवन करने से फिरंग रोग (सिफलिस) नष्ट होता है। पथ्य में दूध, भात खावें, अम्ल (खटाई) और लवण त्याग दें।

(इ) श्वेत कुष्ठ पर- अकरकरा चूर्ण 1 तोला के साथ चित्रक, पीपल और धतूरे के बीज 6–6 माशे तथा त्रिफला, एलुआ, बाबची और मेंहदी के बीज प्रत्येक 1–1 तोला तथा शुद्ध संखिया 1 माशा, सबके महीन चूर्ण को अदरख के रस के साथ खरल कर मूंग जैसी गोलियां बना कर छाया में शुष्क कर रक्खें। प्रतिदिन भोजनोत्तर 1–1 गोली जल के साथ सेवन करने से श्वेत कुष्ठ शीघ्र अच्छा होता है।

(अ) मन्दाग्नि, यकृत विकार आदि उदर व्याधि पर-

(आ) इसका चूर्ण और छोटा पीपल का चूर्ण दोनों समभाग एकत्र कर रक्खें। मात्रा– बड़ों को 1 माशा से 2 माशा तक और बच्चों को 1 रत्ती से 4 रत्ती तक शहद के साथ दिन में 2 या 3 बार प्रति 3 घन्टे के अन्तर से सेवन कराने से यकृत विकार, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, अरुचि आदि नष्ट होते हैं, अथवा–

(आ) इसके चूर्ण को सोंठ के साथ सेवन कराने से मन्दाग्नि, अफरा आदि दूर होते हैं। जलोदर पर भी यह लाभदायक हैं।

उक्त नं० 5 अपस्मार प्रकरण में प्रयोग (आ) का चूर्ण विशेष लाभकारी है। इसे अमृत प्रभा चूर्ण शास्त्रों में कहा है।

(9) हृदय के विकारों पर-

इसका चूर्ण और अर्जुन वृक्ष की छाल का चूर्ण दोनों समभाग का मिश्रण बना प्रातः सायं 2–2 माशे चूर्ण सुखोष्ण दुग्ध के साथ सेवन कराने से हृदय की कम्पन, पीड़ा तथा घबड़ाहट, रक्त का दबाब आदि दूर होते हैं। हृदय की कमजोरी पर इसे कुलिंजन के साथ समभाग मिला क्वाथ बना पिलाने से लाभ होता है।

(10) मासिक धर्म की विकृति और मूत्रावरोध पर-

(अ) इसके चूर्ण की मात्रा 4 रत्ती तक, काले तिल के क्वाथ के साथ प्रातः सायं सेवन करानें से मासिक धर्म की विकृति तथा उसकी रुकावट दूर हो जाती है।

या केवल इसके चूर्ण का फाण्ट विधि से प्रयोग करने से वात कफ के कारण से होने वाली मासिक धर्म की रुकावट दूर हो जाती है।

(आ) मूत्रावरोध- इसके चूर्ण की मात्रा 4 रत्ती में दुगुनी मिश्री का चूर्ण मिला त्रिफला क्वाथ के साथ पिलाने से लाभ होता है।

(11) अश्मरी पर -

आकल्लकादि क्वाथ- अकरकरा, गोखरू, तुलसी पत्र, पाषाण भेद, एरण्ड मूल, पीपल, मुलैठी, काँस की जड़, निर्गुण्डी (सम्भालू) के पत्र, लौंग और सोंठ समभाग का क्वाथ कर उसमें छोटी इलायची का थोड़ा सा चूर्ण मिला सेवन करने से 7 दिन में कैसी भी पीड़ाकारक पथरी हो निकल जाती है।

(12) सन्तान निग्रहार्थ -

इसके चूर्ण के साथ अर्ध भाग पारा गंधक की कज्जली, लौंग, कपूर और सुहागा का महीन चूर्ण मिलाकर समागम के पूर्व शिश्न (अग्रभाग को छोड़कर) पर शहद के साथ लेप करने से गर्भ स्थिति नहीं होने पाती।

(13) सिन्दूर के विष पर -

इसे बच के साथ जल में पीसकर दिन में 3 बार पिलाते है।

(14) आग से रक्षार्थ -

इसे नौसादर के साथ पीस कर तालू और मुख में लगाने से (खूब रगड़ने से)मुख में ऐसी शून्यता हो जाती है कि मुख में जलते हुये आग के अंगारे भी भर लिये जांय तो मुख नहीं जलता। कहा जाता है कि बाजीगर लोग इसी प्रयोग द्वारा अपना अद्भुत खेल दिखलाया करते हैं।

अकमेहन्दी (Lycium Europeaum)

इसे हिन्दी में- अकमेहन्दी, अकमेन्दी, चीर–चीर। गुजराथी में– अटीमटी, कचुरो, कागमेन्दी। मरेठी में– गंगरो, गेंगट और लेटिन में लायसीयम यूरोपीयम कहते हैं[1]। इस बनौषधि का उल्लेख आयुर्वेद तथा यूनानी ग्रंथों में नहीं पाया जाता।

वर्णन- इसका क्षुप इतस्ततः फैला हुआ, हिन्दुस्तान के पश्चिमी प्रदेशों में खेतों की बाड़ों में, या रास्तों के बाजू से पथरीली जमीन या समुद्र के किनारे की रेतीली जमीन में बहुतायत से पाया जाता है। इसका क्षुप दूर से मेहन्दी जैसा दिखलाई पड़ता है। इसी से गुजराथी में कागमेन्दी और उसी का अपभ्रंश हिन्दी में अकमेन्दी नाम से यह पुकारा जाता है।

इसकी दो किस्में (Lycium Barbarum और Lycium Ruthencum) उत्तर हिन्दुस्थान में पाई जाती हैं। वहाँ उन्हें कोहटोर, खिचर, खिट्सर, और किटसरम कहते हैं। कोहटोर विषैला हैं। इसके फल और डालियों के खाने से कई ऊँट मर गये है। यद्यपि ये बूटियाँ धतूरा के वर्ग (Solanaceae) की हैं, तथापि अकमेंहदी उतनी जहरीली नहीं है।

इसका क्षुप झांखर सा, ऊँचाई में 6 से 10 फुट तक होता है। तथा इसमें से अत्यधिक तीक्ष्ण गंध सी निकला करती है। इसकी मूल से जो नवीन अंकुर फूटते हैं वे बड़े सुन्दर दिखलाई देते है। मूल से जो शाखा निकलती है। वही फिर स्वतन्त्र पौधा हो जाता हैं। वर्षा के बाद इसमें जो पल्लवी फूटती है, और यह पत्तों से लद जाता है तब दूर से बिलकुल मेंहदी के पौधा जैसा ही दृष्टिगोचर होता है।

पत्ते- छोटे छोटे कुछ लम्बे अन्तर अन्तर पर (Alternate) फूटते हैं। कहीं कहीं से बहुत पत्ते एक साथ भी निकलते हैं। ये पत्ते साधारण आकार प्रकार में मेंहन्दी पत्र जैसे ही होते हैं।

फूल- श्वेत वर्ण, वर्षा के अन्त तथा शीतकाल के पर्व में आते हैं। इसकी गन्ध धतूरे के फल जैसी होती है।

फल- आकार में काली मिर्च के दाने जैसे प्रथम हरित वर्ण के पकने पर पीले, लाल या केसरिया वर्ण के तथा क्विचित् काले वर्ण के भी हो जाते हैं। फल के ऊपर काले वर्ण की सूक्ष्म नौंक सी होती है। गन्ध उग्र होती है तथा स्वाद में प्रथम मीठा, बाद में चरपरा लगता हैं। फल के अन्दर बहुत सूक्ष्म बीज होते हैं। ये बीज लाल वर्ण युक्त भूरे रंग के चपटे चपटे होते हैं।

गुणधर्म- इसका सर्वांग उपयोग में आता है। यह क्षोभक शोथ और कफ का नाशक तथा मादक है।

मुख्य प्रयोग-

ग्रन्थि तथा अपरिपक्व बड़े बड़े फोड़ों पर इसके पत्ते और मूल को पीस कर पुल्टिस बनाकर बाँधने से वे पक कर फूट जाते हैं।

शोथ तथा त्वचा के विकार- इसके पत्ते, फूल और कच्चे फलों को सिल पर खूब महीन पीसकर छोटी छोटी बड़ियाँ सी बना तिल तेल में पकाने के बाद उस तेल को छान कर रख लेवें। इस तैल की मालिश से लाभ होता है।

इसके कोमल पत्तों का शाक बनाकर शोथ रोगी को खिलाते हैं। तथा वैसे भी गरीब लोग इस शाक को बड़े स्वाद से खाते हैं।

अकलबेर (Datisca Cannabina)

हिन्दी में– इसे अकलबेर अकलबार, अकलबीर बैरबंज। **पंजाबी में–** भाँग जाल, अकिलवीर, बज्र बंग लेटिन और ***अंग्रेजी में*** – डेटिस्का केनाबिना कहते हैं।

यह बनौषधि हिमालय प्रदेश में काश्मीर से लेकर नेपाल तक बहुतायत से होती है। कहीं कहीं सिन्ध प्रदेश में भी पाई जाती है। आयुर्वेद और यूनानी ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

विवरण-यह वृक्ष रूप में सीधा और लम्बा होता है। इसका प्रकाण्ड 2 से 6 फुट तक, महान कठोर एवं बहुशाखा युक्त होता है। शाखायें फूलों से लदी हुई लम्बी होती हैं।

पत्र और पुष्प- पत्ते छोटे छोटे तथा साधारण कंगूरेदार या कुछ कटे हुए से होते हैं। फूल पीले रंग के, लम्बाई में 3 इन्च और चौड़ाई में 1¼ इन्च होते है। पुष्प डण्डी में प्रायः पतली बंधनियाँ होती हैं। पराग कोष लम्बा, अधिक बड़ा तथा बहुत सूक्ष्म तन्तुयुक्त होता है।

बीज- बहुसंख्यक, धारीदार एवं बहुत बारीक।

---

1. इस बनौषधि का विशेष वर्णन सर जे०डी० हूकर के 'The flora of British India' तथा रेव्हरंड ए०के० नेरन के The flowering plants of western India और जार्ज वाट (George watt) के ग्रन्थों में आया हुआ है।

–लेखक

रासायनिक संगठन- इसके पत्र तथा मूल में एक प्रकार का फल शर्करायुक्त अकलबारीन (Glucoside Datiscin) नामक एक सत्व तथा राल सदृश एक कटु सत्व भी पाया जाता है।

अकलबारीन (Datiscin) नामक उक्त सत्व वर्णहीन रेशम के समान, सुई (Needle) या छिलके (scales) के रूप में पाया जाता है तथा उष्ण जल और ईथर में अंशतः विलीन होता है। राल सदृश कटु सत्व के रवे (Crystals) विशेष प्रभावहीन (Neutral) होते हैं।

इसकी छाल में क्वाशिया (Quassia) या महारुख के समान तिक्त सत्व पाया जाता है।

गुणधर्म- यह कटु, सारक, मूत्रल, श्लेष्मनिः सारक, वेदनाशामक तथा ज्वर, गठिया, गण्डमाला, प्रतिश्याय और कामनाशक है।

मात्रा - शीत कषाय या हिम 1½ से 2½ तोला तक। चूर्ण की मात्रा 2½ रत्ती से 7½ रत्ती तक।

मुख्य प्रयोग -

(१) **विषम ज्वर, कण्ठमाला एवं मूर्च्छा पर -** इसका हिम उक्त मात्रा में देने से लाभ होता है। इसके प्रयोग से कंठ तथा वायु प्रणालियों की श्लेष्मिक कलाओं के प्रदाह में लाभ होता है।विषम ज्वर में इसके चूर्ण को जल के साथ देवें।

(२) **सिर दर्द पर -** इसकी जड़ को और पत्तों को पीसकर सिर पर बाँधने से लाभ होता है।

(3) आमवात और गठिया पर – इसका प्रभाव अवसादक रूप से होता है। इसका हिम पिलाते हैं। मूल को पीसकर वेदना स्थान पर बाँधते हैं।

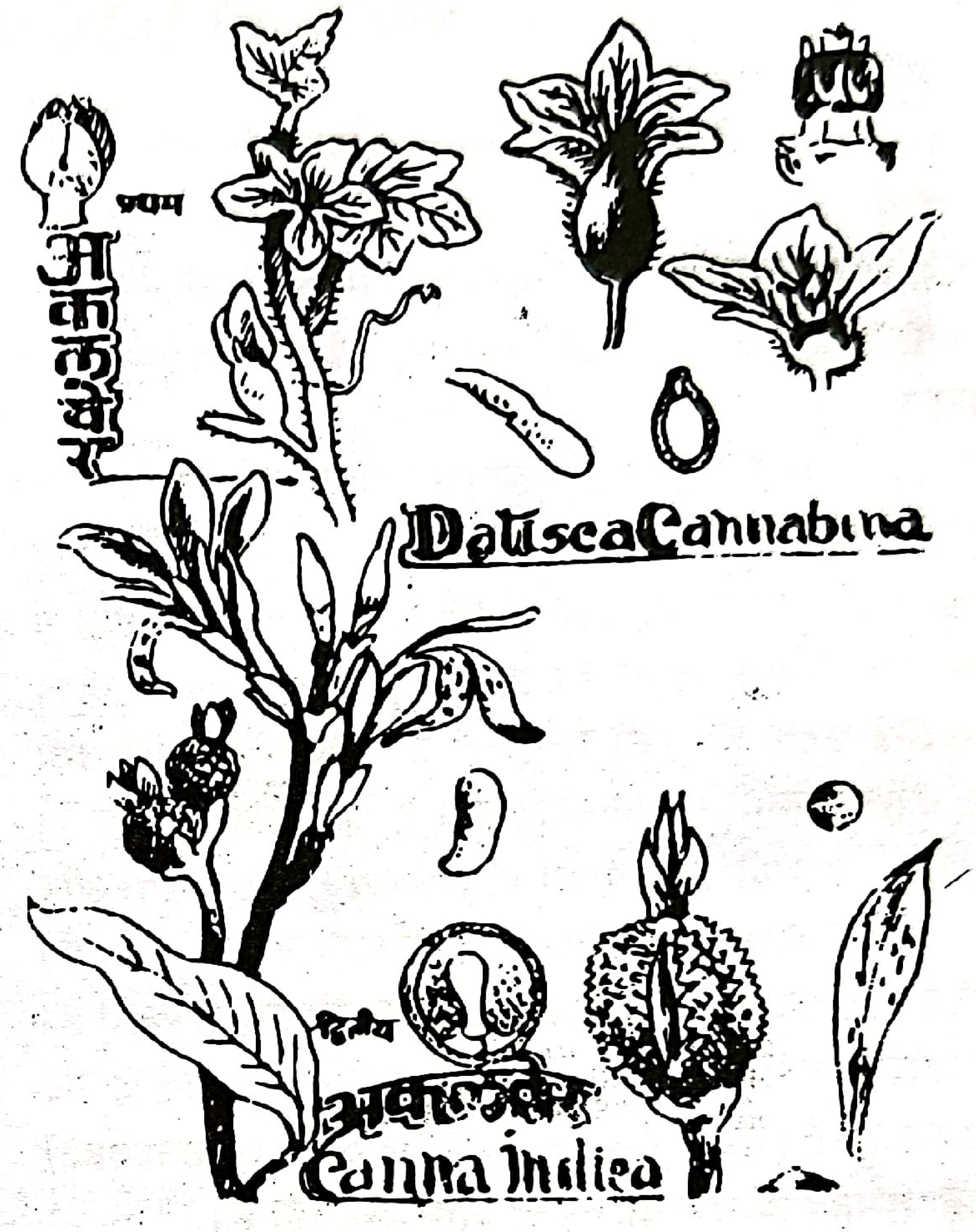

(4) जुकाम और खांसी में – इसके चूर्ण को शहद के साथ या मिश्री के चूर्ण के साथ देते हैं।

(5) दन्त पीड़ा पर – इसके चूर्ण को लगायें।

अखरोट (Juglaos Regia)

नाम -

संस्कृत में – अक्षोट, पार्वतीय, फलस्नेह, रेखाफल।
हिन्दी में – अखरोट। **गुजराथी में –** अखोड़ा।
मराठी में – अक्रोड़। **बंगाली में –** आक्रोट, अकोट।
तेलंगी में–अक्षोलभु। **कर्णाटकी–** अक्रोडु, अखोट।
कश्मीरी– अखोर, क्रोट, दून। **पंजाबी –** चारमग्ज, थमथान।
अंग्रेजी – वालनट (Walnut) **लेटिन –** जुगलांस रेजिया।

उत्पत्ति स्थान - यह प्रायः पर्वतीय प्रदेशों में, हिमालय में कश्मीर से मनीपुर तक तथा अफगानिस्तान, तिब्बत, खसिया की पहाड़ियों में और चीन ईरान में बहुतायत से पाया जाता है। उत्तर हिन्दुस्तान में भी इसके वृक्ष लगाये जाते हैं।

नोट – इसका एक भेद और है जिसे 'जंगली अखरोट' कहते हैं।

विवरण - इसके दो भेद हैं। एक अपने आप उगने वाला और दूसरा बोया हुआ। अपने आप उगने वाला अखरोट का वृक्ष अत्यन्त ऊँचा 100 से 120 फीट तक होता है। तथा इसके फलों का छिलका भी मोटा और कड़ा होता है। बोया हुआ 40 से 90 फीट तक ऊँचा बढ़ता है तथा इसके फलों का छिलका पतला होता है। यह कागजी अखरोट कहलाता है।

वृक्ष के तने की नीचे की मोटाई एवं गोलाई 12 से 28 फीट तक होती है। इसकी लकड़ी बहुत ही अच्छी मजबूत और सुन्दर धारीदार होती है। इससे बन्दूक के कुन्दे आदि बनाये जाते हैं।

पत्ते 4 से 8 इंच लम्बे, गोल अण्डाकार, किन्तु कुछ लम्बाई लिये हुए, नुकीले तथा कंगूरेदार होते हैं। प्रायः 3–3 कंगूरे प्रत्येक पत्र में होते हैं। ये पत्ते डंठल के दोनों ओर

विषमवर्ती लगे हुए होते हैं। छूने में कड़े और मोटे मालूम देते हैं। शीतकाल में झड़ जाते और माघ से चैत्र मास तक नवीन निकल आते हैं।

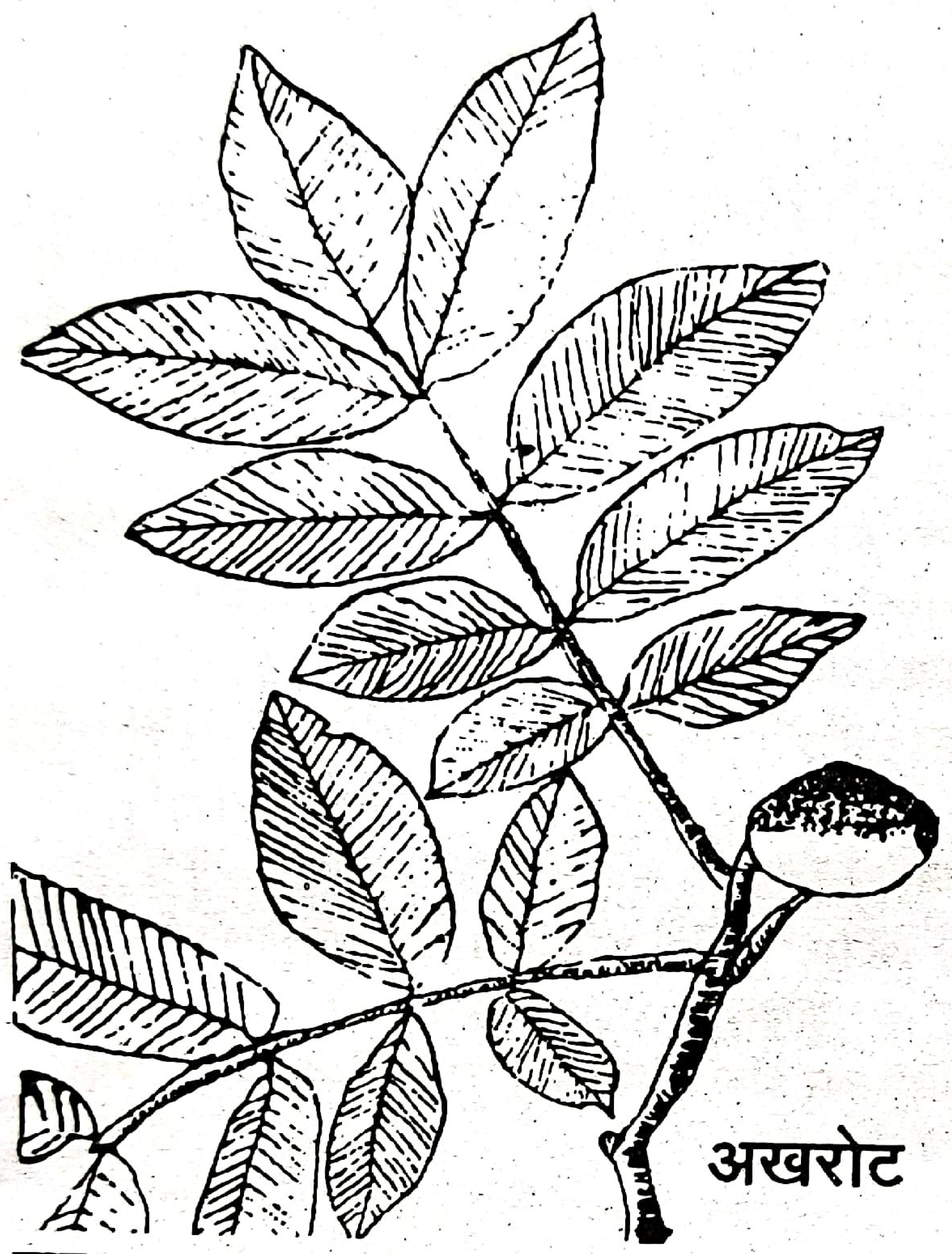

अखरोट

पुष्प -

चैत्र या वैशाख मास में लगते हैं। ये श्वेत रंग के छोटे, शाखाओं के अग्रभाग पर गुच्छों में लगे हुए होते हैं। एक ही गुच्छे में पुंकेसर (Stemens) और स्त्री केसर (Pistil) युक्त दोनों प्रकार के पुष्प होते हैं। इनमें पुंकेसर युक्तों की संख्या अधिक होती है। पुष्पों का आकार मैनफल के पुष्पों जैसा ही होता है।

फल -

शीघ्र ही नहीं लगते। लगभग 30 या 40 वर्ष के बाद लगते हैं। ये दो कोष युक्त बहेड़े या मैनफल के समान गोल होते हैं। गोलाई का व्यास 2 इंच तक का होता है। अन्दर कच्ची अवस्था में दूध सा चिकना पदार्थ होता है जो पकने पर चिकनाई लिए हुए चपटे रूप में पिस्ता या चिलगोजा की मींग जैसा हो जाता है।

उक्त दूध या गिरी के ऊपर तीन छिलके होते हैं। इनमें ऊपरी प्रथम छिलका हरा और मोटा होता है। दूसरा छिलका पहिले छिलके के नीचे कठोर होता है। फिर इसके दो टुकड़े आपस में मिले हुए, सिरा उनका निकला हुआ तथा तीसरे छिलके के भीतर से टेढ़ी मेढ़ी गिरी प्राप्त होती है। इस गिरी पर बहुत झीना (बारीक) छिलका (पकने पर जैतून रंग का हो जाता है), स्वाद में कसैला और कुछ कड़ुवापन लिए हुए होता है। सूखे फल को फोड़ते समय यह झीना छिलका अलग हो जाता है। जब यह फल कच्चे और कोमल दशा में रहते हैं तब स्थानीय लोग उनका अचार बनाते हैं। पकने पर फलों की गिरी मेवा के रूप में सेवन की जाती है।

इस वृक्ष की छाल रंगने और दवा के काम में भी आती है। डंठल और पत्तियों को गाय–बैल आदि जानवर खाते हैं।

उक्त परिपक्व फलों की गिरी का तैल भी निकाला जाता है। पहले फलों को कुछ दिन संग्रह कर किसी शुद्ध स्थान में रखते हैं। तीन महीने बाद उनमें से तैल निकाला जाता है। क्योंकि उस समय तक फलों के अन्दर का दूध जैसा पदार्थ जम का गिरी रूप में आ जाता है।

अखरोट

Juglans regia Linn

(1) उक्त गिरी को महीन कूट, गाढ़े वस्त्र की थैली में भर कर यन्त्र में दबाने से तैल निकलता है। जो पतला और स्वादिष्ट होता है। पीछे उस खल को पानी में उबालने से जो तैल निकलता है वह प्रायः हरे रंग का होता है। ताजी गिरी से निकाले हुए तैल की मिठास की अपेक्षा पुराने गिरी के तैल में मिठास कम होती है तथा उसमें दुर्गन्ध भी होती है। यह

तैल पुराना हो जाने पर अत्यधिक दाहक एवं फफोला उठाने वाला हो जाता है।

(2) 10 सेर गिरी में से तैल निकालना हो तो प्रथम आठ सेर गिरी को कोल्हू में डालकर पेरें, जब महीन पिसकर तैल छोड़ने लगे तो शेष 2 सेर गिरी डाल दें। जब वह अध पिसी हो जाय तब सेर भर मिश्री के बड़े–बड़े टुकड़े उसमें डाल कर पेरने से उसकी खल जमकर तैल अलग हो जाता है। इसे छानकर कुछ दिन चीनी या कांच के पात्र में रक्खे रहने से निर्मल हो जाता है। पीतल या कांसे के पात्र में रखने से तैल नीला पड़ जाता है। इस प्रकार निकाला गया निर्मल तैल विशेष गुणकारी होता है। इसमें दाह करने या फफोला उठाने की शक्ति नहीं होती। औषधि कार्य में यही तैल लिया जाता है।

गुणधर्म-

आयुर्वेदानुसार -

मधुर, स्निग्ध, उष्ण, रुचिदायक, शीतल, भारी, कफपित्तकारक, वीर्यवर्धक, बलवर्धक, विरेचक, वातपित्तनाशक तथा क्षय, हृद्रोग, रुधिर दोष, रक्तवात और दाह कारक है। वातरोग और आमवात में पथ्य है कामोद्दीपक हैं। मुख्य गुण वृष्य तथा रक्तदोष हर माना गया है। शेष गुण बादाम के सदृश हैं।

आधुनिक मतानुसार -

इससे 4.5 प्र०श० पानी, 15.6 प्र०श० प्रोटीन, 64.5 प्र०श० वसा, 1.8 प्र०श० खनिज पदार्थ, 11.00 प्र०श० कार्बोहाइड्रेट, 0.10 प्र०श० कैल्सियम, 0.38 प्र०श० फासफोरस, 4.8 मिलिग्राम प्रति 100 ग्राम, लोहा, 1.5 इ०यू० प्रति सौ ग्राम विटामिन ए, 150 इ०य० प्रति सौ ग्राम विटामिन बी, तथा विटामिन सी कुछ नहीं होता है। सारांश यह है कि इसमें स्निग्ध तत्व 26 प्रतिशत, पोषक तत्व 7 और निशास्ता 6 प्रतिशत तथा पार्थिव तत्व आधे प्रमाण में हैं।

वृक्ष की छाल में संकोचक, कृमिघ्न, ब्रणशोषक और दुग्धोत्पत्ति को न्यून करने का (Lactifuge) गुण है। इसकी छाल के क्वाथ को छाती के कफादि संचय पर दिया जाता है और कंठ पीड़ा निवारणार्थ इसका गंडूष कराने से लाभ होता है। मुख शुद्धि के लिए इसकी छाल को मुंह में रखकर चबाने से दाँत स्वच्छ होते हैं।

फल की छाल में - कृमि और उपदंश नाशक गुण हैं। पत्तों में शारीरिक विकृति सुधारक या परिवर्तक (Alterative) और संकोचक गुण होने से इनका क्वाथ कंठमाला, बालशोष, श्वेतप्रदर और कृमि रोग पर लाभकारी है। और इस क्वाथ से विकृत व्रणों या पिटिकाओं को प्रक्षालन करना लाभदायक है। इसके कच्चे फलों में कृमिघ्न गुण होने से बालकों के कृमि रोग पर यह सेवन कराया जाता है। पके फलों की गिरी स्वादिष्ट और बाजीकर है। इसके पत्तों या फलों से जो मद्य (Spirit) तैयार की जाती है वह श्वासहर, स्नायुवेदना नाशक और गर्भावस्था के ज्वर का शर्तिया प्रतिबन्धक है। मात्रा 1 से 2 ड्राम है। फलों की गिरी में तैल, एब्ल्युमिन या जुग्लैंडिक एसिड और राल होती है।

अखरोट के तैल के गुण - बहुतांश में एरण्ड तैल के समान है। कद्दुदाना कृमि (Tape worms) नाशार्थ, मृदुविरेचनार्थ और विकृत पित्त निःसारणार्थ इस तैल का आभ्यन्तरिक प्रयोग किया जाता है। यह मीठा (मधुर) और पित्त प्रकृति वालों को गरिष्ठ है। बलगम, अफरा को दूर करता है और बालों को पुष्टिकारक है। दृष्टिमांद्य को दूर करने के लिये इसका बाह्य प्रयोग किया जाता है।

मात्रा - फलों की यथारुचि तथा तैल की 2 से 4 तोले तक है।

मुख्य प्रयोग -

(1) अर्दित, गठिया आदि वात पीड़ा निवारणार्थ -

अर्दित या चेहरे के लकवे पर - इसके तैल की मालिश कर वातहर औषधियों के क्वाथ का वफारा देने से लाभ होता है।

वात की पीड़ा पर - इसकी ताजी गिरी को पीस कर लेप करें तथा ईंट को गरम कर उस पर जल छिड़क कपड़ा लपेट उस स्थान पर सेंक कर देने से शीघ्र पीड़ा मिट जाती है।

गठिया पर - इसकी गिरी को नियमपूर्वक सेवन करने से रक्त शुद्धि होकर लाभ होता है।

(2) **नारू पर** - इसकी खल को जल के साथ महीन पीसकर तथा आग पर गरम कर नहरुवा की सूजन पर लेप कर देवें, और ऊपर से पट्टी बांध कर खूब सेंक देने से सूजन उतर जाती है। इसी प्रकार 10 या 20 दिन तक नित्य प्रयोग करने से नारू गल के बह निकलती है। अथवा इसकी छाल को पानी में पीस गर्म कर लगावें।

(3) **स्तन में दुग्ध-वृद्धि के लिये** - गेहूँ की सोजी और अखरोट के पत्र समभाग एकत्र पीसकर गाय के घृत में इसकी पूरियां बनाकर नित्य लगभग 7 दिन तक खाने से खूब दूध की वृद्धि होती है।

(4) **प्रमेह तथा वीर्यस्राव पर** - इसकी गिरी 5 तोले, छुहारा 4 तोले और बिनौला की मींगी 1 तोला, कूटकर थोडे से घृत में भून कर समभाग मिश्री मिला रक्खें। इसमें से 2 तोला नित्य प्रातः सेवन करने से प्रमेह में लाभ होता है। इस

पर दूध नहीं पीना चाहिये।

फलों का छिलका पुटपाक विधि से भस्म कर लें और उसमें समभाग खांड़ मिलाकर 1 तोला तक की मात्रा में जल के साथ 10 दिन तक सेवन कर लेने से धातुस्राव बन्द हो जाता है।

(5) **शोथ पर** - इसका तैल 1 से 4 तोले तक, एक पाव ताजे गोमूत्र मिला पिलाने से सर्वांग शोथ पर लाभकारी है। वातजन्य शोथ पर इसकी गिरी कांजी के साथ पीस कर लेप करने से लाभ होता है।

(6) **रेंचनार्थ** - इसके तैल को 2 से 4 तोले तक की मात्रा में दूध के साथ प्रातःकाल देने से कोठा मुलायम होकर साधारण अच्छा दस्त हो जाता है। अथवा फल के छिलकों का काढ़ा बनाकर पिलाने से भी अच्छा दस्त होता है।

(7) **मस्तिष्क दुर्बलता पर** - अखरोट की बनावट प्रकृति ने वैसी ही बनाई है जैसी मस्तिष्क की है। अतः इसकी गिरी की मात्रा 2 तोला से 5 तोला तक साधारण भोजन के साथ नित्य प्रति सेवन करने से ही मस्तिष्क सबल हो जाता है। भ्रम, तम आदि विकार दूर हो जाते हैं।

(8) **नासूर पर** - इसकी गिरी को महीन पीस मोंम या मीठे तैल के साथ गला कर लेप करें।

(9) **दाद पर** - इसकी गिरी को प्रातः उठते ही दांतों से महीन चबा लेप कर देने से लाभ होता है।

(10) **अफीम के विष पर** - इसकी गिरी को यथेष्ठ खिलाने से अफीम और भल्लातक विष के उपद्रव शात हो जाते हैं।

कुत्ते के विष पर - इसका तेल 1 तोला और गरम जल 5 तोला एकत्र कर (यह एक मात्रा है) 6–6 घण्टे पर पिलाने से 7 दिन में श्वान विष शरीर से बाहर निकल जाता है।

(11) **अन्यान्य प्रयोग** -

(अ) अपस्मार पर - इसकी गिरी को निर्गुण्डी के रस में पीस अंजन और नस्य देते हैं।

(आ) आर्तव प्रवर्तनार्थ - फल के छिलके का क्वाथ शहद मिला सेवन कराते हैं।

(इ) विशूचिका में - तैल की मालिश की जाती है।

(ई) खांसी पर - गिरी को भूनकर चबाते हैं। अथवा छिलके सहित अखरोट की भस्म कर। मात्रा–1 माशा और शहद 5 माशे के साथ चटाने से खांसी मे शीघ्र लाभ होता है।

(उ) वृद्ध मनुष्यों के बलवर्धनार्थ - अखरोट गिरी 1 तोला को समभाग मुनक्का के साथ नित्य प्रातः खाना चाहिये।

श्वेत बाल काले करना - (श्री ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य)

नसपाल (जंगली अनार के फल का छिलका) नीलोफर मूल, बहेड़ा छिलका, प्रत्येक 1–1 पाव पीस लें और ईख (गन्ने) के रस में डाल दें। सब भली प्रकार भीगकर रस 4 अंगुल ऊपर रहे। फिर सब को एक लोहे के पात्र में डाल ऊपर लोहे का ढक्कन लगादें जिसमें छेद हो और अखरोट के पेड़ के नीचे ऐसे अन्दाज से उसे गाड़ें कि उसकी जड़ी की टहनी ढक्कन के छेद द्वारा पात्र में चली जाय व औषधियों को लगती रहे। जड़ को काटकर नीचे से पात्र में डालना होगा। तीन मास तक वह जमीन में गढ़ा रहे। फिर निकाल पतली दवा को बोतल में भर लें। बालों को धोकर अच्छी प्रकार इस दवा को मलने से छोटी आयु में श्वेत हुए बाल काले हो जावेंगे।

●

अगमकी (Mukia Scabrella)

नाम -

संस्कृत – अहिलेखम्[1], अहिल्यकम्।
हिन्दी में – अगमकी, आगमुकी, ग्वालकरी, बिलारी।
गुजराथी – चणक चीभड़ी।
मरेठी में – चिराटी, मेकी। **तेलंगी** – पोट्टीबुदमु।
तमील में – मुसुमुसुक्काई, मोसुमुस्की।
मलयालम में – मुक्कपिरी।
अंग्रेजी में – ब्रिस्टली ब्रायोनी (Bristly bryony)
लेटिन में – मुकिया स्काब्रेल्ला।

उत्पत्ति स्थान -

सड़क के बाजू से, खेत या बाड़ियों में जानवरों के चरागाह में घास के बीच में या झड़बेर के पौधे के पास इसकी बेल भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र पायी जाती है।

विवरण -

इसकी छोटी–छोटी बेल लोमश, खुरदरी होती है, तथा वर्षाकाल में उगकर फैलने लगती है। यह विशेष लम्बी नहीं होती। इसकी मूल 2 इंच से 6 इंच तक लम्बी, कुछ श्वेतवर्ण की, महीन कांटों से युक्त, सुतली जैसी मोटी होती

1. डा० डाईमॉक ऐन्सली के वर्णनानुसार इसका दाक्षिणात्य संस्कृत का नाम उपर्युक्तानुसार है। इसके फल पर सर्पाकार श्वेत धारियाँ होती हैं।, इसी से शायद उक्त नामकरण किया गया है। इसके कच्चे या पक्के फलों को जंगल में ग्वाले लोग खाया करते हैं। इसी से हिन्दी में कहीं–कहीं इसे ग्वालककरी कहते हैं। - लेखक।

है। इसकी डण्डी एवं शाखायें भी सुतली जैसी जाड़ी तथा खड़ी श्वेत धारियों से युक्त होती हैं, और इन पर नन्हें नन्हें छोटे और बड़े दो प्रकार के श्वेत रोंये होते हैं।, कोमल शाखाओं पर ये रोंये अत्यधिक होते हैं।

पत्ते -

समानान्तर में, भिन्न–भिन्न आकार के कोरदार होते हैं। शाखा के निम्न भाग के पत्ते कुछ जोड़े तीक्ष्ण नोकदार तथा लम्बे डंठलयुक्त होते हैं। शाखा के अग्रभाग के पत्तों की डंठलें लम्बी नहीं होतीं। पत्र के दोनों ओर का भाग खुरदरा होता है। पत्र की चौड़ाई 1 इंच से 3 इंच तक, तथा लम्बाई भी लगभग उतनी ही होती है।

पुष्प -

सूक्ष्म, पीले वर्ण के, प्रायः एक ही पत्रकोण में Axillary, नर और मादा (Staminate and Pistillate) फूल भिन्न–भिन्न गुच्छों में लगते हैं। उनमें से नर फूल पुष्प धारण करने वाली छोटी–छोटी शाखाओं पर तथा मादा फूल बहुत ही छोटी डेंठ पर होता है। पुष्पों का ऊपरी आवरण रुऐंदार होता है।

फल -

चना या मटर जैसे एक ही स्थान में 1 से 4 तक होते हैं। ये प्रथम (कच्ची दशा में) हरे वर्ण के तथा लम्बे श्वेत रोमयुक्त होते हैं। और जैसे जैसे पकते जाते हैं उनके रोम कम होते हैं। जब वे पूर्ण पक जाते हैं तब चमकते हुए गहरे लाल वर्ण के हो जाते हैं। और उन पर लम्बाई के रुख श्वेत धारियाँ पड़ी रहती हैं। ये फल अक्टूबर से दिसम्बर मास तक परिपक्क हो जाते हैं, तथा स्वाद में कुछ कटु होते हैं।

बीज - प्रत्येक फल में 5 से 8 बीज होते हैं। ये बीज चिपटे, पीले या श्वेत वर्ण के होते हैं।

उपयोगी अंग - मूल और फल।

गुणधर्म -

आयुर्वेद या यूनानी में इसका उल्लेख हमें नहीं मिलता। आधुनिक मतानुसार यह कृमिघ्न, सारक, आमाशय को बलप्रद, अग्निबर्धक तथा कुछ मूत्रल माना गया है।

मुख्य प्रयोग -

(1) पेट के अफरा, बादी या वातशूल पर इसके मूल का क्वाथ दिया जाता है।

(2) मूल का शीत कषाय 5 से 10 तोले तक की मात्रा में सेवन करने से 'आमाशय के विकार' दूर होते हैं।

(3) बीजों का क्वाथ तीव्र स्वेदक है, इसके सेवन से पसीना खूब निकलता है।

(4) दन्तशूल पर – इसकी मूल चबाई जाती है। चबाकर थूक देने से, दांतों का दर्द तुरन्त मिट जाता है।

(5) डाक्टर पीटर साहब, इसका प्रयोग सिर पीड़ा, या भ्रम की दशा में और पित्त विकार में उपयुक्त बतलाते हैं।

(6) छोटा नागपुर की ओर जंगली जाति के लोग इसके बीजों को पीस कर दर्द के स्थानों पर, विशेषतः कटिशूल या कमर की लचक पर लेप करते हैं

(7) डा० कोमान का अनुभवपूर्ण कथन है कि यह बनौषधि, अपने कफनिस्सारक गुण के कारण उन जीर्ण रोगों की औषधियों का मुख्य अंग रहती है जिनमें कफ की ही प्रधानता होती है। इसे वात नलिकाओं के प्रदाह, कास श्वास आदि कुछ व्याधियों पर प्रयोग करके देखा गया है कि इसका असर बहुत ही धीमा एवं असंतोषजनक होता है।

●

अगर (Aquilaria Agallocha)

नाम -

संस्कृत में – अगरु, क्रिमिज, विश्वधूपक, कृष्णागरु।

हिन्दी, बंगालो, मराठी, गुजराथी, कर्णाटकी और तेलगू में – अगर, अगरु, आग्रु, काला अगर कहते हैं।

पंजाबी में – ऊद।

अंग्रेजी में – ईगल बुड (Eagle wood), आलूबुड (Aloe wood)

लेटिन में – एक्वीलेरिया एजोलोवन।

संक्षिप्त इतिहास -

अगर की प्रसिद्धि अति प्राचीनकाल से है। चरक सूत्र स्थान 34 अध्याय में शिरोवेदनाहर एवं शीतहर प्रलेपों में तथा शीतऋतुचर्या में इसके प्रलेप और अनुलेपन का उल्लेख किया गया है। सुश्रुत में ब्रणधूपन द्रव्यों में अगर का पाठ मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इसके व्यापार का विस्तृत वर्णन आया है।

सिवाय अनुलेपन और धूपादि के अन्य आभ्यन्तरिक प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में इसके नहीं पाये जाते, इसी से शायद डा० विलियम डाइमांक ने निष्कर्ष निकाला है कि 'भारतियों से प्रथम कदाचित् पूर्वी एशिया के मूल निवासियों को इसके उपयोग का ज्ञान हुआ। प्राचीन समय में खुश्की के रास्ते यह मध्य एशिया और फारस में लाया गया, और वहां से अरब और यूरोप में पहुंचा।' इसीलिए शायद किसी ने इसका संस्कृत

नाम 'अनार्य्यम्' या "अनार्य्यकम्" रख दिया है।

प्राचीनकाल में यहूदी धर्म ग्रन्थों में यह "अलहोट" नाम से प्रसिद्ध है। ग्रीक और रोमन लोगों ने इसे 'अगेलोकन' नाम से पुकारा है। प्राचीन अरब निवासी इसे 'अधलूखी' कहते थे, फिर पीछे से इसका नाम 'ऊद हिन्दी' रक्खा है।

उत्पत्ति स्थान -

आसाम प्रदेश प्राचीनकाल से अगर के लिए प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त पूर्वी हिमालय, भूटान, सिलहट, पश्चिमी मलय पर्वत, खसिया पर्वत, टिपेरा की पहाड़ी, मर्तवान की पहाड़ी, पूर्वी बंगाल प्रान्त, ब्रह्मदेश, दक्षिण प्रायद्वीप और मलाया प्रायद्वीप में यह बहुतायत से होता है। सिलहट के निकट जंतिया की पहाड़ियों में सर्वोत्तम अगर होता है।

विवरण -

अगर का वृक्ष बहुत ऊँचा, सदैव हरा भरा, टेढ़ी,–मेढ़ी शाखा युक्त होता है। इसकी ऊँचाई लगभग 60 से 100 फीट तक और गोलाई 5 से 8 फीट होती है। जब यह 21 वर्ष से अधिक वायु का हो जाता है तब इसकी लकड़ी पकने लगती है। किसी किसी के मत से इसे परिपक्व होने के लिये 50 से 60 वर्ष लगते हैं।

पकने के पहले इसकी लकड़ी बहुत साधारण पीत वर्ण की, गन्धरहित होती है। पकने पर इसके धड और शाखाओं में स्थान–स्थान पर एक प्रकार का रस आ जाता है जिसके कारण उन स्थाना सें की लकड़ियाँ बजनदार हो जाती है और उपयोग में लाने योग्य हो जाती हैं। ये ही लकडियां काट ली जाती हैं और 'अगर' के नाम से बिकती हैं। उक्त रस लकड़ी में जितना अधिक होता हैं, उतनी ही लकड़ी उत्तम और भारी होती है किन्तु ऊपर से यह नहीं जाना जा सकता है कि किस पेड़ में अच्छी लकड़ी मिलेगी। बिना सारा पेड़ काटे इसका पता नहीं लग सकता।

पेड़ के हलके या नरम भाग के छिद्रो में कहीं–कहीं उक्त रस कोमल राल जैसा जम जाता है। इस सुगन्धित निर्यास (गोंद) को पेड़ में से खोद कर निकाल लेते हैं, जो 'धूप' के नाम से बाजारों में बिकता है। बिलायत में यह वातरोगों में लेप करने के काम में लाया जाता है।

इसकी लकड़ी पकने पर इसमें एक प्रकार के कृमि पैदा हो जाने से यह शीघ्र ही सड़ने लग जाती है और उसमें सुगन्ध की प्रचुरता होने लगती है। इस प्रकार विकृत भाग सुगन्ध युक्त द्रव्य से व्याप्त हो जाता है। तब ही वह असली सुगन्धित अगर कहलाने के योग्य होता है। इसी से संस्कृत में इसका नाम 'कृमिज' रक्खा गया है

उक्त कृमिजन्य परिवर्तन की परिपूर्णता के लिये लकड़ियों को शाखा रूप में ही काट काट कर किसी जलाशय के समीप की गीली जमीन में गाढ़ देते हैं, जिससे वह सुगन्धयुक्त तैल से पूर्ण, काली और बजनदार हो जाती है। फिर उनमें हलकी या भारी के परीक्षणार्थ उसके टुकड़े टुकड़े कर पानी में छोड़ते हैं जो डूब जाता है उसे गर्की (डूबने वाली, अर्थात् असली काली अगर), जो पूर्णतया नहीं डूबता, आंशिक रूप में जलमग्न होता है उसे नीम गर्की (अथवा कम डूबने वाली) या 'समालहे आला' और जो पानी पर तैरता रहता है उसे 'समालह' कहते हैं। अन्तिम समालह नाम की अगर सर्व सामान्य, एकदम हल्की जाति की मानी जाती है। गर्की अगर एकदम काला सुचिक्कड़ होता है। और शेष दोनों हल्के धूसर वर्ण के होते हैं। गर्की अगर स्वाद में कडुवा, किंचित् कसैला और सुगन्धदार तैल से पूर्ण होता है।

बम्बई के बाजार में सियाम या मावरधी, सिंगापुरी और गागुली नामों से 3 प्रकार की अगर बिका करती है। इनके अतिरिक्त जंजीबार से भी अगर आती है। ये साधारणतः ठीक होती हैं, किन्तु सिंगापुरी श्रेष्ठ मानी जाती है।

अगर की ही जाति की तगर नामक सुगन्धित लकड़ी हिन्दुस्तान में सर्वत्र सुलभ और स्वस्त होने से कई

ठग व्यापारी अगर के नाम से इसे ही भोले भाले ग्राहकों के हाथ बेच देते हैं।

'चूरा अगर' नाम से जो अगर का चूरा बाजारों में मिलता है, उसमें चन्दन, तगर अथवा अन्य सुगन्धित काष्ठ के टुकड़े मिले हुये रहते हैं। औषधि कार्यार्थ यह अनुपयुक्त है।

ध्यान रहे अगर के टुकड़े बेडौल और उनमें राल (सुगन्धित रस) परिमाणानुसार धूसर या गहरे धूसर वर्ण आदि विभिन्न रंगों के टुकड़े लम्बाई की रूख में गहरे रंग की नसों से व्याप्त होते हैं और जल में डूब जाते हैं।

पत्र - अगर वृक्ष के पत्ते बड़े बड़े, 2 से 3।। इंच तक लम्बे, आकृति में अडूसे के पत्ते जैसे होते हैं। वे डंठलों में इतनी मजबूती से लगे होते है कि बड़ी आंधी में भी नहीं गिरते। इनमें भी कीड़ा लग जाया करता है, जिससे वे झंझरे होकर सड़ या सूखकर गिर पड़ते हैं। वृक्ष की शाखायें श्वेत, कुछ पीलापन लिये हुए खुरदरी और तन्तुदार होती है।

पुष्प और फल-

पुष्प छत्राकार श्वेत वर्ण के चैत्र मास (अप्रैल) में प्रायः उगते हैं। इनमें कोई विशेष गन्ध नहीं होती। श्रावण या अगस्त मास में यह फलता है। फल चौथाई इंच से कुछ अधिक लम्बा होता है।

उत्तम अगर की पहिचान

जो अगर कालावर्ण का, वजनदार, जल में डूबने वाला, चूर्ण करने पर रेशारहित, चबाने से दांतों में चिपट जाने वाला एवं मृदु प्रतीत हो और स्वाद में तिक्त, जलाने पर सुहावनी सुगन्ध देता हो, उसे सर्वोत्तम जानना चाहिये। चक्रदत्त जी का कथन है "काक तुण्डाकृतिः स्निग्धो गुरूश्वैवोत्तमोऽगुरुः। अर्थात् – जो अगुरु काण्ठ (अगर) आकार में कौवे की चौंच के समान, स्निग्ध और भारी हो, वह उत्तम अगर है। यदि अगर सार भाग रहित, पाण्डुर, रूक्ष और हलका हो तो निष्कृष्ट समझें।

गुणधर्म -

आयुर्वेदानुसार-

गरम, चरपरी, त्वचा को हितकारी, कड़वी, तीक्ष्ण, पित्तजनक, हल्की, स्निग्ध, मंगलदायक, रुचिकारी, प्रशमक, कांतिबर्धक और कास, कफ कुष्ठ, खुजली, वातरोग, कर्ण रोग, तृष्णा, मृगी, उन्माद आदि नाशक है। श्वासहर, शीतप्रशामक है। इनमें भी कृष्णागरु या काला अगर तिक्त, कटु, उष्ण, लेप करने से शीतल, जल के साथ सेवन करने से पित्तशामक, पौष्टिक और लघु होता है। किसी के मत से इसका चूर्ण पित्तकारक है। और कर्णरोग, नेत्ररोग, त्रिदोष, दाह, त्वग्दोष, कफ और वातनाशक है।

काष्ठागरु-कुछ पीतवर्ण की होती है। कटु उष्ण, लेप में रूप और कफनाशक है। और मुखरोग, वमन और वायुनाशक भी है।

दाहागरु-जो गुर्जर देश में प्रसिद्ध है, इसे तैलागरु भी कहते है। चरपरी, उष्ण, केशबर्धक, वर्ण को उज्ज्वल करने वाली, केशों के दोषों को हरने वाली और निरन्तर सुगन्धिदायक है।

स्वाद्वगरु-कसैली, उष्ण और नस्य प्रयोग से वायुनाशक है।

मंगलागरु- जो विशेषतः केदार में प्रसिद्ध है, शीतल, सुगन्धयुक्त और योगवाही है।

आधुनिक मतानुसार-

वातरक्त और आमवात में इसका प्रयोग किया जाता है। शोथयुक्त संधियों पर इसका प्रलेप लाभदायक है। ज्वर में इसका क्वाथ पिलाने से तृषा शमन होती और प्रवाहिका आदि पचनेन्द्रिय संस्थान के विकारों में इसका चूर्ण दिया जाता है। चक्कर आना, लकवा आदि वात संस्थान के रोगों में इसका सेवन और लेप भी कराया जाता है। दाहयुक्त, सूजन, गाँठ और दाहयुक्त व्युची आदि पर इसका लेप लाभकारी है। इससे जू, चायजूं आदि छोटे कृमि नष्ट हो जाते हैं।

शस्त्र चिकित्सा सम्बन्धी व्रण एवं क्षतों की वेदना शमनार्थ और वायु की शुद्धि के लिये इसकी धूनी दी जाती है [1] इससे कोई भी जहरी वायु एवं जहरीले जन्तु शरीर को स्पर्श नहीं कर सकते।

शुक्र सम्बन्धी निर्बलता, सिर में चक्कर आना और श्वेत प्रदर में यह नाड़ी को बलदायक औषधि है। इसकी जड़ तिक्त और अग्निबर्धक है। इसके प्रयोग से उदरशूल, ज्वर, जलोदर और समस्त शरीर की ढीली पड़ी हुई सूजन दूर हो जाती है। अगर की लकड़ी को पानी में उबाल कर, छानकर ठंडा हो जाने पर पिलाने से ज्वरजन्य भयंकर तृष्णा शमन होती है। और मृगी एवं उन्माद में भी यह लाभदायक है। यही बात सुश्रुत में भी कही गई है।

रासायनिक विश्लेषण - अगर में एक उड़नशील तेल जो ईथर में विलय होता है और दूसरी राल रहती है जो मद्यसार (अलकहोल) में घुलनशील और ईथर में अघुलनशील होती है। कोई कोई इसे उष्ण प्रकृति के लिये हानिकारक मानते हैं और

1. सुश्रुत गें व्रणधूपन द्रव्यों के मध्य अगर का पाठ दिया है। देखो सुश्रुत अ० 6।

इसके उतार के लिये कपूर और गुलाब की योजना करते हैं।

अगर के अभाव में देवदार बालछड़, तज, लवंग या केसर ली जाती है। अथवा सुगन्धित लाल चन्दन लेना चाहिये।

मात्र- क्वाथ की 4 से 12 ड्राम या 5 से 10 तोला तक। चूर्ण की मात्रा 2 माशे अथवा 10 से 30 रत्ती तक। तैल की मात्रा– 30 से 60 बूंद।

मुख्य प्रयोग-

(1) अगर तैल- इसे 'रोगन अगर' या 'दहन उल ऊद' फारसी और अरबी में कहते हैं। यह सुर्ख या पीतवर्ण का कुछ कडुवा और अगर के समान गन्धवाला होता है। इसका गुण कृष्णागार (काले अगर) के समान है। इसकी मालिश पट्ठों को मजबूत करती है, गठिया और खुजली को दूर करती है। पेट के कीड़े को नष्ट करता है। इसका तिला तहरीकवाह (वाह को हरकत) करता है और कुब्वत को बढ़ाता है।

(2) त्वग्दोष, दाह ब्रणादि पर- अगर की लकड़ी को सिल पर जल के साथ पीसकर या घिसकर उसका चन्दन शरीर पर लगाने से शरीर के तीव्र दाह और त्वचा के अन्यान्य विकारों को दूर कर वर्ण उज्जवल करता है। इसीलिये अगर को 'वर्णप्रसादन' भी कहते है। इसे विसर्प (छाजन), और अत्यन्त दाहयुक्त व्रणादि पर लेप करने से शान्ति प्राप्त होती है।

अगर 2 भाग, लोहबान, लोध्र, खस, नागरमोंथा 1–1 भाग और कपूर, केशर अर्ध–अर्ध भाग एकत्र चूर्ण कर इसमें से आवश्यकतानुसार चूर्ण जल में मिला उबटन करें। इस सुगन्धित उद्वर्तन से भी विशेष लाभ होता है। अथवा –

अगुर्वादि धूप (अगर, कपूर, लोबान, नखी, तगर, सुगन्धवाला, चन्दन और राल) – से दाह शांत होती है।

दद्रु, कुष्ठ, किटिभादि चर्म रोगों पर अगर का तैल लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

बाल्मीक नामक क्षुद्र रोग - जिसमें बांबी जैसी सछिद्र गांठ या गांठें गर्दन, गला, कंधा, कांख आदि स्थानों पर होती हैं। इस पर अगर 2 भाग, नीम छाल और चमेली पत्र 1 – 1 भाग, इलायची अर्ध भाग और मेनसिल एवं हरताल चौथाई भाग लेकर, जल के साथ कल्क करें। फिर इस कल्क से चौगुना भाग लेकर, जल के साथ कल्क करे। फिर इस कल्क से चौगुना तिल तैल मिला, तैल को साफ करलें। इसी तैल को लगाने से लाभ होता है।

उदर्द (कफप्रधान शीतपित्त) - इस रोग में अगर की छाल को जल में पीस घृत के साथ 7 दिन चटाने से लाभ होता है।

(3) ज्वर, मस्तक पीड़ा आदि पर - पित्त ज्वर में मस्तिष्क में बहुत ही पीड़ा एवं जलन होती है तब अगर को कपूर, चन्दन, खस आदि अन्यान्य पदार्थों के साथ पीसकर लेप करने से जलन, पीड़ा आदि उपद्रवों की शांति होती है। धूप में पैदा हुई मस्तिष्क पीड़ा भी इससे शांत होती है। पित्त को शांति करने वाला होने से पित्तजन्य वमन आदि कई व्याधियों के क्वाथों में अगर की योजना की जाती है।

निमोनिया ज्वर के तीव्र उत्ताप के कारण रोगी बेचैन हो तो इसका तैल 15 या 20 बूंद, 5 तोले जल में मिला, कपड़ा तर कर और कुछ निचोड़ कर सिर पर पट्टी रखने से लाभ होता है।

(4) कास् श्वास और हिक्का - उत्तम अगर का महीन चूर्ण कर शहद के साथ दिन में 3 या 4 बार चटाने से खांसी और हिक्का में परम लाभ होता है।

श्वास और हिक्का पर उत्तम अगर का धूवाँ नासिका द्वारा अन्दर खींचने से लाभ होता है। बालकों की फुफ्फुस विकृति जन्य खांसी (ब्रांकाइटिस) पर अगर और ईश्वर मूल को एकत्र पीस ब्राण्डी में मिलाकर वक्षस्थल पर लगाते हैं। इसी कल्क को सिर पर भी लगाते हैं।

(5) प्रमेह पर - शीत प्रमेह पर अगर का काढ़ा या हिम शहद मिलाकर पिलाने से अवश्य लाभ होता है।

लवणमेह पर - इसे पाठा के साथ मिलाकर क्वाथ बनाकर सेवन करावें।

इहस्तिमेह पर - इसके पत्ते और हरड़ की छाल क्वाथ बनाकर सेवन करावें।

(6) मन्दाग्नि और हृदयरोग में - इसके चूर्ण को शहद के साथ देने से लाभ होता है।

(7) कोमोद्दीपनार्थ - अगर से बहुत बढ़िया इत्र तैयार किया जाता है और 'चोया' या 'चोबा' नामक पदार्थ भी इसी से बनता है। इस चोया को पान में लगा कर खाने से अत्यन्त कामोत्तेजक, और वीर्यवर्धक यूनानी प्रयोग का यह एक खास अंग है।

(8) अगर बत्ती बनाने की विधि - उत्तम अगर, नागरमोथा, नखला, लोबान 4–4 भाग, खस, तगर, कचूरा, छड़ीला और गूगल 2–2 भाग, चन्दन का बुरादा और शिलारस 18 भाग, कस्तूरी 1 भाग, और मेदा लकड़ी 9 भाग, लेकर प्रथम सबका महीन वस्त्रपूत चूर्ण कर, बाद में कस्तूरी और शिलारस मिलावें। इसमें थोड़ा कोयले का चूर्ण भी मिलावें। चिकास के लिये थोड़ा गुड़ मिला, बांस की सलकों पर लगाकर धूप में सुखालें। और भी कई विधि हैं, उनमें से एक यहां लिख दी गई है।

अगस्तिया (Sesbania Grandiflora)

संस्कृत – अगरत्स्य, बंगसेन, मुनिपुष्प, मुनिद्रुम, इत्यादि।
हिन्दी – अगरत्त, अगथिया, हथया, वासन्त।
मरेठी – अगरत्ता, हादगा, हेटा हेटी।
गुजराती – अगथियों, बंगाली – बकंफुलेर गाछ, वक्रपुष्प।
तेलंगी – अनीसे अविसि, लल्लय बिसेचेट्टु।
अंग्रेजी – लार्ज फ्लावर्ड अगती (Large flowered Agati)
लेटिन – सेसबानिया या अगटी ग्रांडोफ्लोरा।

इतिहास -

मुनिराज अगरत्स्य के नाम से इसकी प्रसिद्धि होने का कारण यह है कि जब अगरत्स्य मुनि या तारे का उदय होता है तब ही इसके वृक्षों पर फूलों का उदय होता है। वैसे तो अगरत्स्य यह एक महान प्रभावशाली मुनि का शुभ नाम होने से. कई आयुर्वेदीय प्रयोग (अगरत्त सूतराज, अगरत्स्य रस, अगरत्स्य मोदक आदि) जिनमें इस बूटी का किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं, उसके नाम से विख्यात हैं।

डाक्टर डिमक और उनके अनुयायियों का कथन है कि यह बूटी भारतवर्ष की नहीं है। पूर्व द्वीप पुंज (Eastern Islands) की है, और वहां से भारत में लाई गई है। किन्तु हमें उनका यह कथन भ्रमपूर्ण मालूम देता है। ढाई हजार वर्षों से भी प्राचीन ऐसे सुश्रुत ग्रन्थ में जब हम इस बूटी का उल्लेख पाते हैं तब कैसे मान लें कि यह भारतवर्षीय नहीं है। चरक के पुष्पवर्ग में इसका उल्लेख न होने से शायद वे ऐसा कहते हों तो उन्हें यह ध्यान रखना चाहिये कि सुश्रुत के समय में चरक संहिता का जो रूप था वह आज हमें उपलब्ध नहीं, संभव है प्रति संरकरण के समय इसके उल्लेख में भूल हो गयी हो अथवा अन्य किसी नाम से इसका उल्लेख हो।

उत्पत्ति स्थान

भारत में जहां जहां जल की प्रचुरता तथा वायुमण्डल उष्ण प्रधान शीत है वहाँ यह प्रचुरता से होता है। उदाहरणार्थ बंग प्रदेश, मध्य प्रदेश, बरार, बम्बई आदि दक्षिण की ओर तथा उत्तर प्रदेश के गंगा जमुना के बीच के प्रदेशों में यह बाग, बाड़ियों में बहुतायत से होता है। चौमासे में इसके बीज जहां तहां उग उठते हैं। उत्तर आरट्रेलिया में यह खूब होता है।

इस पर पानों की और द्राक्षों की बेलें बहुत अच्छी तरह चढ़ती हैं, अतः पान की पनवाड़ी और बाग बगीचों में यह बहुत लगाया जाता है।

विवरण

इसका वृक्ष सजल प्रदेश में लगभग 10 से 30 फीट ऊँचाई में बढ़ जाता है। किन्तु इसका जीवन काल अन्य वृक्षों की तरह दीर्घ नहीं होता। यदि इसे जल न मिले और शीत विशेष हो तो बड़ी मुश्किल से 2 से 4 फीट तक बढ़कर ही रह जाता है।

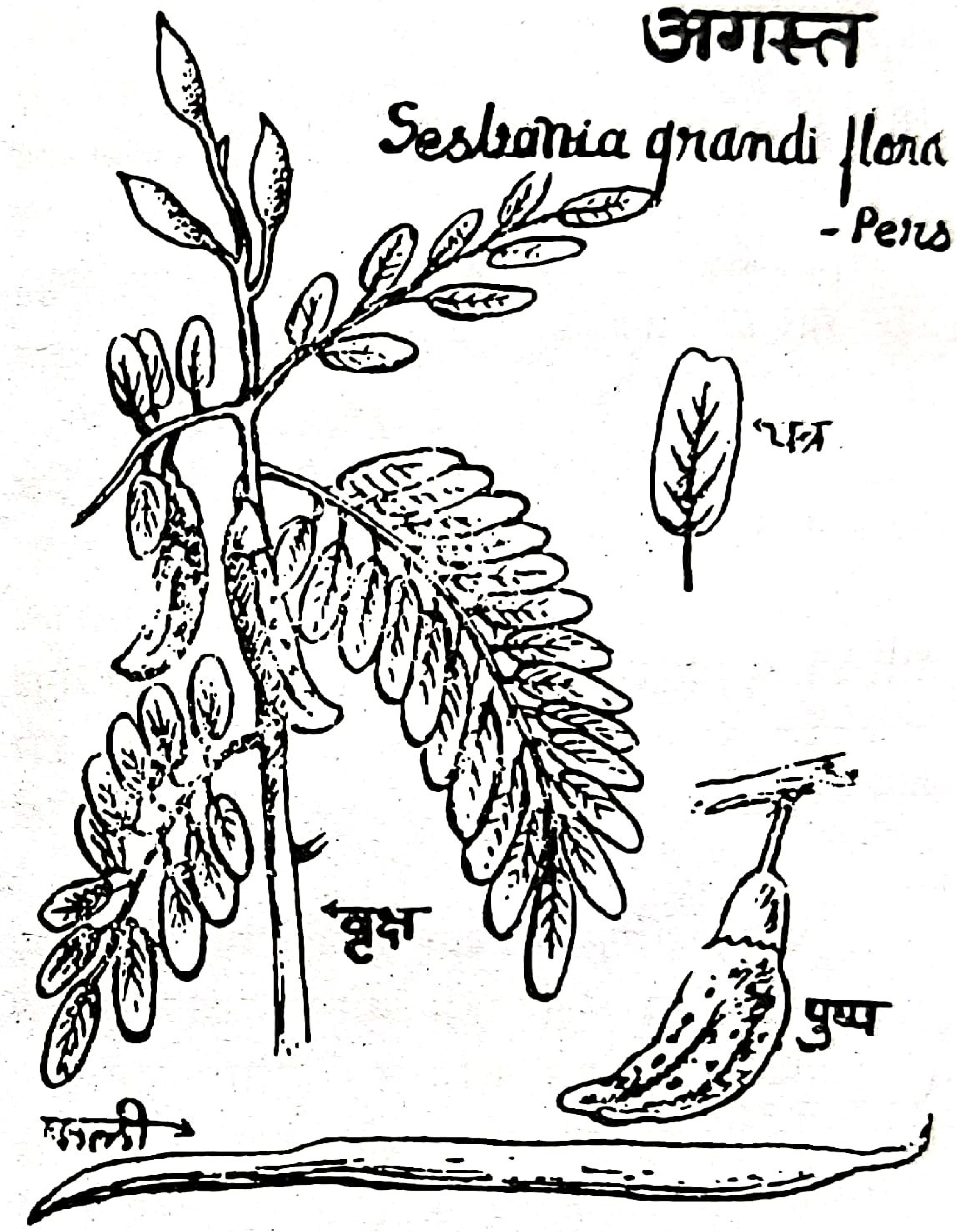

इसका पेड़ सीधा – साफ और श्वेत या धूसर वर्ण का होता है। जब यह पत्र और पुष्पों से लद जाता है तब बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है। इसमें बहुत सी घनी शाखायें छोटी छोटी पतली पीत हरित वर्ण की तथा कुछ शाखाये जाड़ी मोटी भूरे रंग की होती हैं। यह वृक्ष पक्षियों को बहुत प्रिय होता है, नाना प्रकार के पक्षी इस पर किलोल किया करते हैं। इसकी लकड़ी सफेद कोमल, हलकी तथा शीघ्र सड़ने वाली होती है।

पत्र - दीर्घवृन्त के जोड़ जोड़ पर दोनों ओर एक दूसरे के सामने जोड़े से लगभग 20 से 30 संख्या में होते हैं। ये पत्र इमली या सहिंजना के पत्र जैसे किन्तु आकार प्रकार में उनसे बड़े अण्डाकार लम्बाई में 1 से 1½ इन्च तक, फीके

हरित वर्ण के चिपचिपे से होते हैं। ये स्वाद में कुछ अम्ल और कसैले होते हैं। ग्रामीण लोग इसके कोमल पत्रों की शाग बना कर खाते हैं।

पुष्प - वृक्ष के पत्र कोणों (Axillaries) में से पुष्पों को धारण करने वाली श्वेत रोम युक्त 2 से 3 इन्च तक लम्बी लाल और श्वेत वर्ण वाली बाल जैसी शाखायें नीचे की ओर झुकी हुई निकलती हैं। इस पर 2 से 5 पुष्प वक्र या चन्द्रकला के समान शुभ या लाल वर्ण के बड़े आकार के आते हैं। आयुर्वेद में नीले और पीले पुष्प युक्त अगस्तिया का भी उल्लेख मिलता है, और कहा गया है कि–

सित पीत नील लोहित कुसुम भेदाच्चुतुर्विधोरगरितवृक्षः।
राजनिघण्टु।

प्रत्येक पुष्प की लम्बाई 1 इन्च से 2 इन्च, कहीं कहीं चार इन्च तक भी देखी गई है। वर्षा ऋतु के बाद ये फूल उगते हैं। ये गूदादार तथा मधुरी मादक गन्धयुक्त होते हैं। ये अगस्त्योदय तक बने रहते हैं। एक ही वृक्ष पर कई बार श्वेत लाल वर्ण के पुष्प आते हैं। कई वृक्ष पर केवल श्वेत ही श्वेत पुष्प तथा कई वृक्ष पर केवल लाल वर्ण के ही पुष्प लगते हैं। लाल पुष्प वाले को लाल अगस्ति Sesbania Coccinea कहते हैं।

नोट - पंजाब की ओर जयन्ती (जन्तर तन्तर) नामक जो बनौषधि सर्वप्रसिद्ध है, उसकी और अगस्त्य की बहुत कुछ समानता है। अगस्त्य के अभाव में जयन्ती का ही प्रयोग किया जाता है। अगस्त्य के कोमल पत्र, पुष्प और फलियां शाक के काम में आती हैं। किन्तु बहुत दिनों तक लगातार अधिक प्रमाण में खाने से अतिसार हो जाता है।

गुणधर्म -

आयुर्वेदानुसार-

कडुवा, शीतल, रूक्ष, वातकारक तथा पित्त, कफ, चातुर्थिक ज्वर, प्रतिश्याय, त्रिदोष, भ्रम, कास, विवर्णता, भूतबाधा, योनिशूल, तृष्णा, कुष्ठ, शोथ, श्वास, और श्रमनाशक है। दीपन और बल को घटाने वाला है।

पुष्प - शीतवीर्य, मधुर, कडुवा, कसैला पचने में चरपरा तथा त्रिदोष, तिजारी, चातुर्थिक ज्वर, रतौंधी, पीनस रोग, और वातरक्त नाशक हैं।

शिम्बी - हल्की दस्तावर, रुचिकारक, कडुबी, पचने में मधुर, बुद्धिदायक, स्मरणशक्तिवर्धक, तथा त्रिदोष, शूल, पाण्डु, विष, शोथ, (कहीं कहीं शोष पाठ है) और गुल्मनाशक है। पक्व फली–रूक्ष और पित्तकारक होती है।

पत्र – चरपरे, कडुवे, भारी, मधुर, किंचित गरम तथा कृमि, कफ, कण्डू, विष, रक्तपित्त, रतौंधी, अपस्मार और प्रतिश्याय निवारक हैं।

आधुनिक मतानुसार-

इसकी छाल संकोचक, कटु पौष्टिक, पाचनशक्ति वर्धक है। ज्वरादि रोग निवारक क्वाथों में इसकी योजना की जाती है। इसका क्वाथ खांसी, कफ, दस्त, शूल और त्वचा के रोगों पर दिया जाता है। चेचक की प्रथमावस्था और अन्य स्फोटकीय ज्वरों में इस छाल का शीत कषाय (हिम या फांट) विशेष लाभदायक होता है। छाल के चूर्ण की फक्की लेने से अतिसार दूर होता है। छाल की अपेक्षा इसके गोंद में स्तम्भन शक्ति अधिक होती है।

इसकी जड़ या मूल कफ निःसारक है। इसका रस शहद के साथ तरुण कफ रोग में प्रयोजनीय है। इससे सारा दूषित कफ झड़ जाता है। लाल पुष्प वाली अगस्त की जड़ पानी में पीस गरम कर लेप करने से गठिया की सूजन उतर जाती है।

इसके पत्ते रेचक हैं इन्हें गरम जल में भिगोकर उस जल को पान करने से बद्धकोष्ठ मिटता है, अच्छा जुलाब हो जाता है। पत्र रस का मर्दन करने से खुजली, फोड़े, फुन्सियाँ दूर हो जाती हैं। ये पत्ते पुल्टिस की जगह काम आते हैं पत्र और पुष्प के रस की नस्य देने से पीनस, प्रतिश्याय और शिरोवेदना कम हो जाती है। पुष्प प्रमेह रोग में भी लाभकारी हैं।

श्रीयुत राजा शशिशेखरेश्वर रायबहादुर का अनुभव पूर्ण कथन है कि इस "बनौषधि के पत्ते, डण्ठल, फूल और फल के बीच की डण्डी (बोड़ी) आदि सभी व्याधि विनाश की पृथक शक्ति रखते हैं। सारांश यह है कि फूल और बोड़ी का गुण एक प्रकार का होता है और पत्ते का गुण पृथक होता है। पत्ते के गुण धारक, श्लेष्म निःसारक, पर्याय निवारक और शुष्ककारक हैं तो फूल और बोड़ी का गुण श्लेष्म निःसारक, स्निग्धकारक, पाचक और स्नायु उत्तेजक है। डण्ठल का गुण रूक्ष, वेदना–नाशक और आवरक है।

इस बनौषधि के पत्ते, पुष्प और डण्ठल में एक प्रकार की एसिड (तेजाब) की क्रिया होती है। परीक्षा द्वारा विदित हुआ है कि वह एसिड नाइट्रोम्युरेटिक एसिड के तुल्य ही अपनी क्रिया दर्शाता है अर्थात् पित्त निःसारण (पित्त को दूर करने की (क्षमता) रखता है। एक समय हमने इसमें से एसिड निकालने के उद्देश्य से फूलों को सड़ाकर उसके ऊपर के भाग को लेकर फिल्टर पेपर में छानकर जो अंश प्राप्त किया था उसे चखकर देखने पर वह पूर्ण अम्ल गुण

विशिष्ट (तेजाबी) था। उस अम्ल (खटास) में सोड़ा मिलाकर हमने स्वयं दो दिन पिया था, उससे हमारा अम्ल पीड़ाजन्य मलावरोध दूर हो गया था, और गले की जलन और हृदय की ज्वाला भी कम हो गई थी। अधिक मात्रा में उस पदार्थ को खाने से मानो एक तरह का नशा सा चढ़ गया था। वास्तव में इस वनस्पति में नार्कोटिक (निद्राजनक) जाति की सामग्री वर्तमान है।

अगस्ति के पुष्प में रतिरोधक शक्ति है। उच्छृंखल युवकों की कुप्रकृति का दमन करने के हेतु, हम अपने उद्देश्य को उनसे गुप्त रखकर उन्हें प्रतिदिन भुना हुआ पुष्प खिलाया करते हैं। नूतन प्रमेह रोग में पुष्प का फांट व्यवहार करने से उक्त गुण की पूर्ण उपलब्धि होती है। जिन लोगों को यह रोग होने पर कर्डी अर्थात लिंगोत्थान होता है और वे इसकी उत्तेजना से प्रपीड़ित होते हैं, ऐसी दशा में यह पुष्प उत्कृष्ट प्रतिषेधक–स्वरूप कार्य करता है। इसके पुष्प का क्वाथ 1 पाव और 2 तोले हल्दी का रस, इन दोनों को पिचकारी द्वारा नूतन प्रमेह रोग में व्यवहार करने से दो ही दिनों में पीव बहना तथा ज्वाला दूर हो जाती है (यहाँ प्रमेह से सुजाक या गनोरिया लिया गया है)

सुनने में आया है कि सन्यासी, योगी आदि त्यागी महात्मा इसके पुष्प रस में हरीतकी चूर्ण मिला, महीने में 2–3 बार व्यवहार किया करते हैं। जो कुछ हो, इस फूल का सर्वश्रेष्ठ गुण श्लेष्मनिःसारण और स्नायु उत्तेजन है।

जिस स्थान पर सर्दी होकर अजस्र श्लेष्मा झरना चाहे अथवा झर न सके, या शुष्क होकर पहुँचावें, उस स्थल पर इसके पत्ते, डण्ठल और फूल लेकर उनका क्वाथ तैयार कर शहद के साथ व्यवहार कराने से तत्काल लाभ होता है।

जिन्हें अजीर्ण के कारण दस्त होते हों, आहार के उपरान्त ही पाखाने गये बिना जो स्थिर न रह सकते हों, वे लोग इसकी बोड़ी को थोड़ी सी अदरक के साथ चबाकर खाने से 2–3 दिन में ही उस दुःख से छुटकारा पा सकते हैं।

जो वातप्रधान धातुग्रस्त हैं अर्थात् जिनके हाथ पांव सर्वदा दुखा करते हैं, शरीर के जोड़ फूल जाते हैं, उसमें दर्द, टपकन होती हैं, वे लोग प्रतिदिन भुने हुए अगस्त के फूल को खायें। इससे उनको आहार तथा औषधि दोनों ही लाभ होंगे।

विलायती ग्रिमल्ट–सिरप इत्यादि फुफ्फस परिशोधक औषधियों का व्यवहार जो लोग नहीं कर सकते, वे लोग अगस्त पुष्प और बासक (अडूसा) फूल को लेकर उसमें चीनी मिला शर्बत तैयार कर लें। इच्छा होने पर सुगन्ध तथा उसका लाल रंग करने के लिये उसमें इलायची और कच्ची हल्दी का रस मिला देने से वह सुगन्धयुक्त तथा देखने में सुन्दर हो जायगा।

मात्रा–त्वक क्वाथ (20 भाग में 1 भाग) की मात्रा 1¼ से 2½ तोले तक। मूल स्वरस की मात्रा 2½ माशे से 5½ माशे तक। शर्बत की मात्रा 2 माशे से 2½ तोले तक।

इसे ज्यादा प्रमाण में सेवन करने से उदर में वायु उत्पन्न होता है। इसका उतार या दर्पनाशक सोंठ और काली मिर्च है।

मुख्य प्रयोगः-

(1) ज्वर परः- विशेषतः चातुर्थिक ज्वर में, ज्वर आने के दिन ज्वर से पूर्व इसके पत्र के रस की नस्य देने से लाभ होता है। किन्तु यदि प्लीहा और यकृत में विकार हो तो इस प्रयोग को नहीं करना चाहिए।

निमोनियां अर्थात् फेफड़ों के शोथ एवं कफज कास श्वास के साथ यदि ज्वर हो तो इसकी जड़ की छाल का अथवा पत्तों का या सर्वांग के 1 तोले या 2 तोले स्वरस में समभाग शहद मिला सेवन कराने से अत्यन्त लाभ होता है। इससे शुष्क कफ पिघल कर निकलने लग जाता है। अथवा इसकी जड़ की छाल का महीन चूर्ण लगे हुए पान के बीड़े में रखकर सेवन कराने से भी वही लाभ होता है।

चतुर्थिक ज्वर में इसके पत्र के रस को दो या तीन चम्मच लेकर उसमें एक चम्मच शहद मिला प्रातः सायं सेवन कराने से शीघ्र ही इस शीतपूर्वक ज्वर का आना रूक जाता है। कभी कभी इस प्रयोग से वमन हो जाया करती है। इस प्रयोग को बराबर 15 दिनों तक देते रहना चाहिए। यदि यह ज्वर रुक कर पुनः आने लगे तो फिर 15 दिन तक देते रहना चाहिये। इस प्रकार 3 या 4 बार 15–15 दिन के अन्तर से इसका सेवन कराने से ज्वर समूल नष्ट हो जाता है।

(2) कफविकार, प्रतिश्याय, अर्धशीर्ष आदि पर–यदि नवजात शिशु के कंठ और छाती में कफ की प्रबलता हो और वह बेचैन हो तो इसके पत्र के रस की दो–दो बूंदों में चौगुना शहद मिला, उंगली के सिरे पर लगाकर शिशु के मुख के अन्दर बड़ी सावधानी से तालुप्रदेश में लगा देने से सहज ही कफ पतला हो बहने लग जाता है। तथा शिशु चैतन्य लाभ करता है।

बालक या बड़ों के कफ विकार पर लाल अगस्त्य की मूल या छाल का रस 1 या 2 तोला, शक्ति अनुसार, सेवन कराने से लाभ होता है। यदि मात्रा की अधिकता से कुछ विकार हो तो मिश्री का शर्बत पिलावें।

प्रतिश्याय या जुकामः-की प्रबलता से सिर बहुत दुखता हो

तो पत्र रस की दो बूँद नाक में टपकाने से तथा जड़ का रस 1 या 2 तोला तक शहद के साथ सेवन कराने से जुकाम पतला होकर बह उठता है और सिर साफ हो जाता है।

अर्धशीर्ष - विशेषतः प्रतिश्याय के पश्चात् होने वाले आधे सिर के दर्द पर जिस ओर के कपाल में दर्द हो उसकी दूसरी ओर की नाक में इसके फूलों या पत्तों का रस टपकाने से कुछ देर में छींकें आकर नाक से खूब पतला स्राव होने लगता है, तथा शूल दूर हो जाता है। इससे नासिका की पीड़ा भी मिट जाती है।

(3)अपस्मार, मूर्च्छा, उदरशूल, संधिवात आदि विकार

अपस्मार - इसके पत्र दो भाग और काली मिर्च 1 भाग दोनों को गो मूत्र के साथ पीस तथा महीन वस्त्र में निचोड़ कर रोगी को नस्य करावें।

यदि छोटा बालक अपस्मार से ग्रस्त हो तो उक्त प्रयोग में गोमूत्र की योजना न करते हुए, उक्त मिश्रण में रुई का फाया तरकर उसके नासारंध्र के पास रखने से ही कार्य हो जाता है। (हारीत)

मूर्च्छा पर - केवल पत्र रस की 4 बूंदे नाक में टपका देने से ही कार्य हो जाता है।

उदर शूल पर - इसकी छाल के क्वाथ में थोड़ा सैंधानमक और भुनी हुई हींग मिलाकर पीने से 3 दिन में पुराने से पुराने शूल आदि उदर विकार दूर हो जाते हैं।

(वै० मनोरमा)

बालकों के उदर विकार पर - इसके पंत्र रस को उचित मात्रा में पिलाने से दो चार बार दस्त होकर सब विकारों की शान्ति हो जाती है।

बात के कारण शरीर जकड़ गया हो तो - लाल अगस्त्य की मूल–छाल 4 रत्ती तक पान के बीड़े में रख कर खाने से शीघ्र ही (कुछ दिनों में) लाभ होता है।

गठिया या सन्धिवांत पर - लाल अगस्त्य की मूल को जल के साथ पीस कर, गर्म कर लेप करें।

यदि गठिया में वेदनायुक्त असह्य शोथ हो तो अगस्ति मूल और धत्तूर मूल समभाग पीस कर पुल्टिस जैसा बनाकर बाधें।

(4) नेत्र विकारों पर-

नक्तांध्य या रतौंधी पर - इसके पत्र एक पाव भर लेकर सिल पर पीस, एक सेर गोघृत में पकाकर घृत सिद्ध कर लें। इस घृत को सेवन कराने से परम लाभ होता है। अथवा–इसके फूलों को जल में घिस कर आंखों में आंजना चाहिये।

नेत्राभिष्यन्द - (आखों में शोथ, स्राव, पीड़ा आदि) हो तो इसके पत्र रस (2 या 4 बूंदों) का नस्य देने से दूषित जलस्राव होकर लाभ होता है।

दृष्टिमांद्य, धुंध या जाला पर - इसके फूलों का रस अथवा पुष्पमधु (यह मधु पुष्प के भीतर होता है, पुष्प के मूल भाग को तोड़ने से 2 या 3 बूंद मधु निकलता है) आंखों में लगायें।

नेत्र विकार ग्रस्त रोगी को पुष्पों का शाक नियमपूर्वक खाना चाहिए। अथवा इसके पत्तों को घृत में भूनकर खावें और घृत पान करें।

(5) चोट आदि व्रणों पर -

चोट, मार आदि बाह्य कारणों से शरीर कुचल गया हो, सूजन आ गयी हो तो इसके पत्तों को पीस कर बांध देने से ही लाभ होता है।

यदि उक्त कारणों से व्रण या जख्म हो गयी हो तो पत्तों को कुचल कर और थोड़ा गरम कर पुल्टिस जैसा बनाकर बांध देने से पीव और राध बहकर व्रण शीघ्र ही भरकर ठीक हो जाती है।

अन्तर्विद्रधि पर - पेट के भीतर जो फोड़ा हो जाता है उस अन्तर्विद्रधि का इलाज बड़ी मुश्किल से किया जाता है। किन्तु उस पर भी अगस्त पत्र बड़ा अच्छा कार्य करते हैं। पत्तों को गीले कपड़े में लपेटें और ऊपर से चिकनी मिट्टी का लेप कर उसे भड़भूजे के भाड़ या आग में ढांक कर डाल दें। जब मिट्टी सूखने लगे तब गोले को निकाल, अन्दर की गर्मागर्म पत्तियां दर्द की जगह बांध देने से अन्तर्विद्रधि फूटकर बह जाती है।

(6) वातरक्त और चेचक पर-

वातरक्त पर - फूलों को धूप में सुखाकर महीन चूर्ण करें। फिर भैंस के दूध में (1 सेर दूध में 10 तोला चूर्ण) मिला, गरम कर दूध को जमा देवे। दूसरे दिन उसका मक्खन निकाल कर, मालिश करने से लाभ होता है। इससे खाज में भी लाभ होता है।

शीतला या चेचक - की प्रथमावस्था में अगस्त

मूल की छाल का हिम या फाण्ट दोषानुसार बनाकर सेवन करावें।

(7) श्वेतप्रदर तथा योनि कण्डु पर -

इसकी ताजी छाल को कूटकर इसका रस निचोड़, कपड़े की बत्ती को इसमें तर कर योनि में रखने से लाभ होता है। (कोषकार)

(8) चित्तविभ्रम पर -

इसके पत्र रस में सोंठ, पीपर और गुड़ मिलाकर नस्य देने से लाभ होता है।

(9) स्मरण शक्ति वर्धनार्थ -

अशक्ति के कारण यदि स्मरण शक्ति कम हो गयी हो तो अगस्त के बीजों का चूर्ण 3 माशे से 1 तोला तक धारोष्ण गौदुग्ध एक पाव के साथ प्रातः सायं कुछ दिन देना चाहिए और विशेष चित्त विभ्रम हो तो इसके छायाशुष्क पुष्पों के चूर्ण का नस्य देने से आराम होगा। प्रतिदिन इसी प्रकार प्रयोग करने से विशेष लाभ शीघ्र ही होता है। (वैद्य रक्षपाल जी मिश्र)।

(10) खुश्की, कास आदि पर-

इसकी पत्तियों के क्वाथ के कुल्ले करने से कण्ठ की खुश्की, सूखी खांसी, जीभ का फटना, गला बैठना तथा कफ के साथ रुधिर निकलने में लाभ पहुँचाता है। (बूटी प्रचार)

(11) मासिक धर्म की रुकावट में -

इसके फलों की शाक अधिक प्रमाण में खाने से लाभ होता है।

(12) दाढ़ दर्द पर -

इसकी गोंद को डाढ़ के नीचे दबाकर रखने से लाभ होता है।

(13) भस्मों को लाल वर्ण की करने के लिए -

इसके पत्र रस की पुट देने से भस्मों का वर्ण लाल पद्मराज जैसा सुन्दर हो जाता है।

●

अगिया (अगिन) (Andropogan Citratis)

विशेष वक्तव्य-

इस बूटी के विषय में बहुत मतभेद हैं। कोई उस घास को अगिया, छोटी अगिया, अग्निबूटी आदि नामों से पुकारते हैं, जो वर्षाकाल के पश्चात् रबी (गेहूँ, ज्वार, बाजरा) के खेतों में पैदा होती है। यह 4 इंच से लेकर 1 फुट तक लम्बी कहीं कहीं तक पायी जाती है। यह अनेक शाखायुक्त या शाखा रहित भी होती हैं। पत्ते कुछ लम्बे, सफेद रोएँ वाले एवं खुरदरे होते हैं। इसमें श्वेत पीत और कुछ नीले रंग के फूल आते हैं। फूल के मध्य में कुछ सुर्ख रेखा भी होती है। यह ज्वार, बाजरा आदि के पौधों को जला देती है। इतना ही नहीं ये जिस वृक्ष की जड़ पर उत्पन्न हो जाती है, उसके रस को चूस लेती हैं तथा वृक्ष सूख जाता है। किन्तु जिस वृक्ष की जड़ जमीन में बहुत अन्दर होती है, उस पर इसका कुछ भी असर नहीं होता।

उक्त बूटी के प्रयोग के विषय में रसायनाचार्य श्री पं० भागीरथ स्वामी जी ने लिखा है कि–

इसका उपयोग अर्श के मस्सों पर होता है। खूनी या बादी किसी भी तरह का अर्श हो इसके पंचांग को उबाल कर ठण्डा कर (सुखोष्ण) क्वाथ से मस्से को रोज धोने से मस्सा सूख जाता है, और दर्द भी बन्द हो जाता है। इसकी राख या भस्म में मीठा तेल मिलाकर पशुओं के घाव पर लगाने से पशुओं का घाव अच्छा हो जाता है।

स्वामी जी का और भी कथन है कि–"अगिया नाम की एक दूसरी बूटी मारवाड, पंजाब, यू०पी० आदि में जुआर, बाजरा, मक्का के खेतों में होती है। इसके पत्ते मिर्च के समान होते हैं। इसमें 4 या 5 पंखुरी वाला छोटा फूल आता है और छोटी छोटी फलियाँ लगती हैं। इसका पौधा 1 या 2 विलस्त का होता है। किसान लोग खेतों में से इसे उखाड़ कर फेंक देते हैं। यदि पशु इसे खा लेते हैं तो चक्कर खा कर गिर पड़ते हैं। इस बूटी को मारबाड़ में 'माचण' कहते हैं।

अगिया नाम की एक और बूटी जल के सूख जाने पर धान के खेतों में छोटे कद की होती है। इसकी पत्ती दो जौ के बराबर लम्बी तथा आधे जौ के बराबर चौड़ी होती है।

अगिया नाम का एक पौधा 6 से 10 फुट तक लम्बा हिमालय, आसाम और व्रह्मदेश की ओर बहुतायत से होता है। इसके पत्ते और डण्ठलों में जहरीले रोऐं होते हैं। ये रोऐं यदि शरीर में धंस जांय तो बड़ी पीड़ा करते हैं। वहां के पहाड़ी लोग इसकी छाल से रेशे निकाल कर एक मोटा कपड़ा

बनाकर व्यवहार में लाते हैं।

कहीं कहीं जल धनियां का या रोहिष (रूसा) को भी अगिया, अग्निवती आदि कहते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग में इस अगिया घास का वर्णन कहते हैं, जो आंध्रप्रदेश में 'गन्धतृण' और निघण्टुओं में 'भूतृण' नाम से प्रसिद्ध है–

नाम-

संस्कृत में– भूतृण
हिन्दी में– अंगिया, अगिनघास, हरी चाय, नीली चाय।
मरेठी में– गवतीचहा, सुगन्धीचहा, पतीचहा।
गुजराथी– गंधबेला, लिलीचा। बंगाली–गंधबेन
तेलगु– निम्मागद्दी, छिपगादी। तामील–कर्पूर पुल।
कनडी– मज्जिगेहुल्लु। मलयालम–चायापुल।
फारसी में– छेदकाश्मीरी। **अंग्रेजी में**– लेमन–ग्रास (Lemon grass), स्वीट रस (Sweet rush), जिंजर ग्रास (Ginger grass) और **लैटिन में**– अंड्रोपोगान सिटासिट।

उत्पत्ति स्थान-

यह घास हिन्दुस्तान में प्रायः सर्वत्र बागों में होती है।

विवरण-

यह ऊँचाई में 1 से 3 फीट तथा जमीन पर फैली हुई क्षुप रूप में होती है। इसके पत्ते लम्बे, हरितवर्ण के, खुरदरे और नुकीले दर्भ या कांस के पत्ते जैसे, किन्तु लम्बाई में उनसे छोटे होते हैं। जब पत्ते झड़ जाते हैं तब शाखायें बिना पत्तों की रहती हैं और शीघ्र ही जल पाने पर पत्र युक्त हो जाती हैं। इसका एक भेद सुगन्ध भूतृण है। जिसे मरेठी में पुदनी गवत या सुगन्ध गवत और गुजराथी में सुगन्ध तृण कहते हैं। यह रसायन गुणविशिष्ट है। कहा है–

गन्ध तृण सुगन्धिः स्यादोषत्तिक्तं रसायनम्।
स्निग्ध मधुर शीतं च कफपित्त भ्रमापहम्।।

यह बहुत कम प्राप्त होती है।

इसके पत्ते और तेल काम में लाया जाता है। इसका तैल ताजी घास से यन्त्रों द्वारा निकाला जाता है, जो उड़नशील होता है। अंग्रेजी में इसे (Lemon grass oil) लैमन–ग्रास आयल, (Oil of verbena) आयल आफ बरबीना या (Indian molissa oil) इन्डियन मोलिसा आयल कहते हैं। इसमें सिट्राल (Citrol) नामक नीबू के सत्व जैसा एक सत्व पाया जाता है।

गुणधर्म -

आयुर्वेदानुसार -

चरपरी, कड़वी, हल्की, तीक्ष्ण, उष्ण, दस्तावर, अग्निदीपक, रूक्ष, नेत्रों को अहितकारी, मुखशोधक, वातसन्तापनाशक, भूतग्रह आवेश निवारक, विष विकार नाशक, पुंसत्वनाशक (कामेच्छा नाशक) तथा कृमि, खाँसी, श्वास, कफ और दद्रु नाशक है। रक्त पित्त के रोगी के लिए अहितकर है।

आधुनिक मतानुसार -

यह उत्तेजनाबर्धक, स्वेदल, मूत्रल, श्वासवेदनाहर तथा कर्षण और दीपन गुण युक्त है। ज्वर विशूचिका (हैजा), अपस्मार, आंत्रविकार, उदर विकार और कासनाशक है। यह हैजा के कुल उपद्रवों को शांत कर देती है। गठिया वात, स्नायु शूल, संधिवात, मोच आदि कष्टदायक विकारों पर इसका बफारा, लेप आदि उत्तम रहता है।

मुख्य प्रयोग -

1. ज्वर पर - इसका बफारा देने से अथवा इसकी चाय या फांट में सोंठ, दालचीनी और थोड़ी शक्कर मिलाकर पिलाने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है। इसकी यह चाय उदर शक्तिवर्धक, मूत्रल और दाहनाशक है। स्वस्थ पुरुष भी इसका सेवन कर लाभ उठाते हैं।

2. मासिक धर्म की विकृति पर - इसके फाण्ट में केवल कालीमिर्च मिला सेवन कराने से लाभ होता है।

३. शूल, प्रतिश्याय आदि कफ वातविकारों पर - इसके फाण्ट में सोंठ, कालीमिर्च, पोदीना और मिश्री मिलाकर देने से लाभ होता है।

४. हैजा पर - इसके तैल की मात्रा 2 से 5 बूंद तक शक्कर में मिलाकर देने से उपद्रव सहित विशूचिका शांत होती है।

५. कटिग्रह, संधिवात, स्नायुशूल आदि पर - इसके तैल में समभाग शुद्ध नारियल का तेल मिला प्रलेप या मालिश करने से शीघ्र लाभ होता है। दद्रु या दाद पर भी यह प्रयोग लाभकारी है।

अन्य बाह्य प्रयोगार्थ इस तैल में अन्य तैल को दुगुने प्रमाण में मिलाना चाहिये।

●

अग्नियूम (Premna Latifolia)

विवरण-

आयुर्वेद या यूनानी ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं है। अंग्रेजी में भी केवल Indian medical plants नामक ग्रंथ में इसका संक्षिप्त वर्णन है। इसे कुमायूँ प्रान्तों में अग्निऊ कहते हैं। उसी पर से 'अग्नियूम' नाम पड़ा है।

हिन्दी, बंगला, भूटानी आदि भाषा में– अग्नियूम, बकार, बकर्च, बसौटा, जैटेला आदि। कुमायूं में अग्निऊ। पंजाबी में–गियान, बनखार, गनहिला। नेपाली में– गिनेरी और लेटिन में–प्रेम्ना–लैटिफोलिया कहते हैं।

उत्पत्ति स्थान -

यह नेपाल, भूटान, खासिया पहाड़, कुमायूँ प्रान्त, बंगाल, कर्नाटक, त्रिनावेल्ली आदि स्थानों पर पाया जाता है।

वर्णन और गुणधर्म-

इसका झाड़ी के समान पौधा होता है। पत्ते गोल अण्डाकार होते हैं। यह मूत्र निस्सारक होने से जलोदर, शोथ आदि पर उत्तम कार्यकारी है। इस पौधे के बक्कल का दूध सूजन और अर्बुद पर लगाने से लाभ होता है। पशुओं के उदरशूल में इसके पत्तों का रस दिया जाता है। पंजाब में इसका रस औषधि प्रयोगों में डाला जाता है।

मुख्य प्रयोग-

जलोदर–इसकी पत्ती लगभग 6 तोले और धनियां 1½ तोला लेकर दोनों को कुचल कर, 25 तोले उबलते हुए जल में डालकर 10 मिनट तक रक्खे रहें। पश्चात इसे छानकर मिलाने से तीव्र जलोदर में लाभ होता है। साथ ही साथ रोगी के उदर पर इसके पत्र रस को खूब मर्दन करना चाहिए।

●

अंकोल (Alangium Lamorokii)

विशेष वर्णन-

यह बूटी भारतवर्ष को छोड़ अन्य देशों में प्रायः नहीं होती। आकुली, अंकोसी, अंकोली अंकुल, आदि शब्द अंकोल वाचक हैं। अंकुली और आकुली शब्दों का प्रयोग कामरत्न प्रभृति तंत्र ग्रन्थों में बहुत बार हुआ है। स्वर्गीय हरिप्रपन्नाचार्य जी ने इसके रहस्य को बतलाते हुए लिखा है कि "अंकुर अस्मिन्नस्तीत अंकुरी शब्द सिद्ध होता है और रकार के स्थान में लकार का परिवर्तन प्रायः भाषा में हुआ करता है। इसके बीज के तैल में आम्रादि के बीजों (गुठलियों) को विशेष रूप से भावित करके बाजीगर अपने पास रक्खा करते हैं और उस पर पानी छिड़क कर तत्काल उसको अंकुरित एवं फलितावस्था दर्शाकर लोगों को आकुल या चकित किया करते हैं। यह एक प्रकार का इन्द्रजाल विद्या में विस्तृत रूप से वर्णित है। इसी तरह आकुलयति लोकानां विचित्र घटनाभिश्चेतॉसि अर्थात् आश्चर्ययुक्तानि करोति' इस व्युत्पत्ति से 'आकुली' शब्द सिद्ध होता है।"

यह भारतीय पैदावार होने से इसका वर्णन प्रायः सभी प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में पाया जाता है। यूनानी प्राचीन ग्रंथों में इसका वर्णन नहीं है–

इस बनौषधि के संस्कृत नाम के अपभ्रंश रूप में ही प्रायः अन्यान्य भाषा के नाम पाये जाते हैं।

नाम -

संस्कृत– अंकोल, अंकोट, कोलक, दीर्घकीलक, विषघ्न।
हिन्दी– अंकोल, अकोसर, अक्रोड़, ढ़ेरा, अकोला।
मरेठी – अंकोलीवृक्ष, आंकुल अंकोली।
बंगाली– आंकोट, आंकड़, धल आंकोर, ढलाकुश।
तेलंगी– अक्षोलमु, उड़गु, उड़ीके।
कनाड़ी– अंकोले, अंकोलायमरा।
लेटिन– एलेंजियम लमारकिआई, एलेंजियम हेक्सापेटेलम
अंग्रेजी–सेजलीव्हड अलेंजियम (Sage Leaved Alangium)

उत्पत्ति स्थान -

वनों पर्वतों विशेषकर ऊंचे और सूखे स्थानों में बिना बोये स्वयं उत्पन्न होता है। इसको पथरीली, कंकरीली एव

रेतीली भूमि अधिक उपयोगी है। हिमालय की घाटी से लेकर गंगा तट उत्तर प्रदेश, अवध तथा बिहार, बंगाल, राजपूताना, बर्मा, और उष्णकटिबन्ध में स्थित दक्षिण भारतबर्ष के कोंकण, गुजराथ, पोरबन्दर आदि प्रान्तों के बनोपवनों में बहुतायत से पाया जाता है। पर्वतीय प्रदेशों में विशेषतः झरनों के आस–पास देखा जाता है। बम्बई में म्युनिसिपल्टी की सड़कों पर दोनों ओर शोभा के लिए इसके वृक्ष लगाये गये हैं।

अंकोल

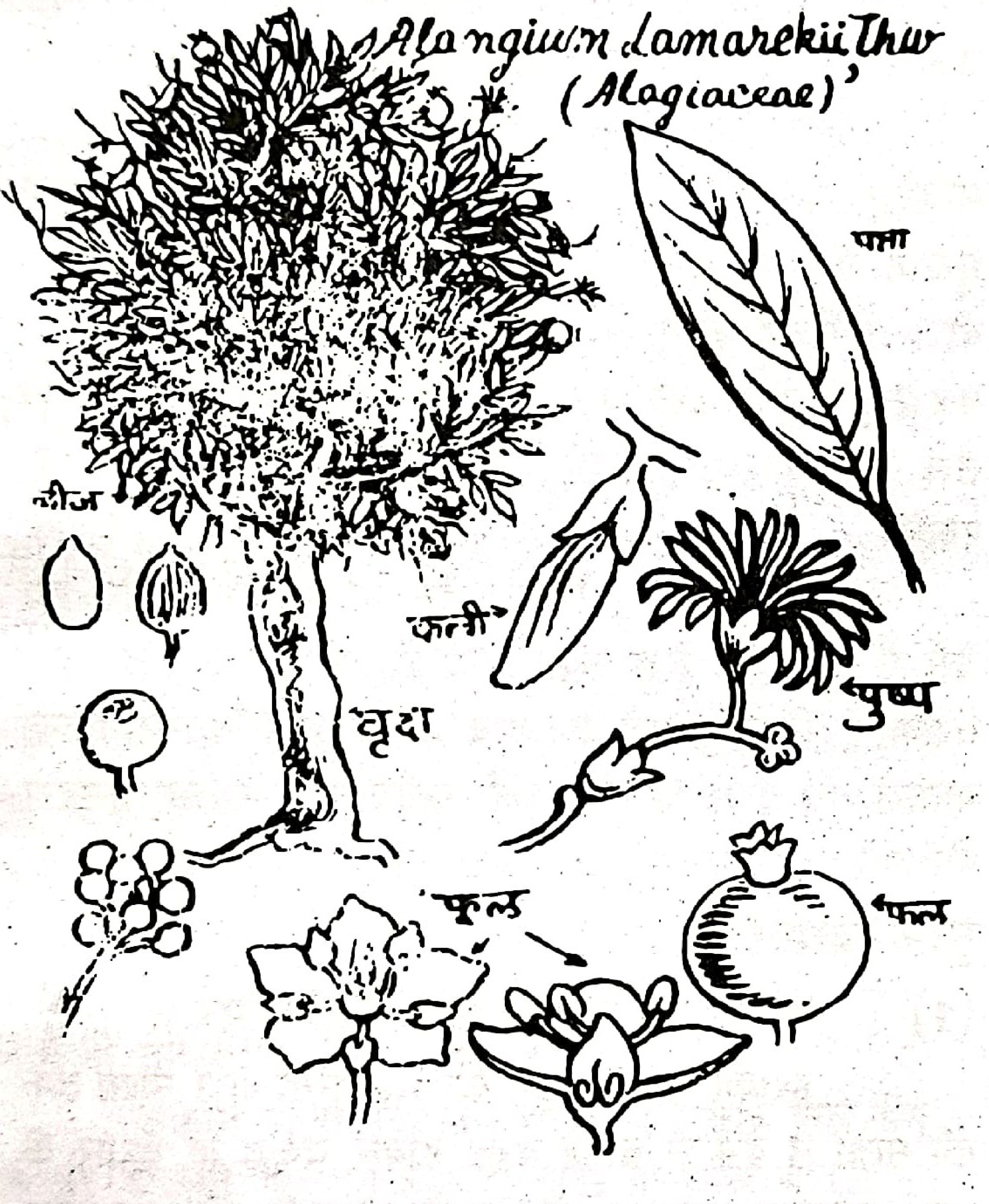

विवरण -

श्वेत और काला भेद से अंकोल वृक्ष प्रायः दो प्रकार का होता है। कोई कोई इसे लाल और पीला भी बतलाते हैं। डाक्टर मोदन शरीफ आदि कई महानुभावों का कथन है कि जिसके फूल बैंजनी या श्याम वर्ण के, छाल गम्भीर धूसर वर्ण की होती है। वह काला अंकोल श्वेत अंकोल की वास्तव में एक जाति विशेष है। ठीक है, इसे चाहे जाति विशेष कह लो या भेद, बात एक ही है। कारण दोनों में अन्य सर्व लक्षणों की समानता है। विशेष भेद यह है कि श्वेत की अपेक्षा काला अंकोल परम प्रभावशाली है और इसका प्राप्त होना भी सर्वत्र सुलभ नहीं है। जहॉ तहाँ श्वेत ही देखने में आता है। कहीं कहीं वातावरण और जमीन के भेद से उसमें पीलापन दिखाई देने पर पीला और लालिमा दिखाई देने पर लाल अंकोल कह दिया करते हैं।

चारों ओर फैली हुई आड़ी टेढ़ी और लम्बी शाखाओं से सुपल्लवित यह वृक्ष बहुत सुहावना होता है। ऊंचाई इसकी 25 से40 फीट तक और पिण्ड की गोलाई 2।। फीट होती है। शाखाओं का रंग प्रायः श्वेत, आरम्भ में कंटक रहित होती है। पुराने या युवावृक्ष प्रकाण्ड से निकली हुई आरम्भिक शाखायें भी कंटक रहित होती हैं। किन्तु पश्चात् जहां पत्र निकलते हैं वहीं पर प्रायः कांटे हो आते हैं। अर्थात् पत्र के स्थान में टहनियों पर छोटे छोटे कांटे निकल आते हैं।

फल - लगभग रीठा या जंगली बेर के बराबर 2/3 इन्च लम्बा, गोलाकार, चिकना, डंठल में झुका हुआ लगता है। ये फल प्रायः बैशाख से श्रावण मास तक लगते और पकते रहते हैं। ज्येष्ठ या आषाढ मास तक पूर्णतया पक जाते हैं।

कच्ची अवस्था में फल हरे वर्ण का तथा ऊपर खड़ी रेखाओं से युक्त होता है। छाल चीवट तथा स्वाद में कडुवा होता है। इसका व्यास 1/2 इंच से 5/8 इंच तक होता है। ऊपर का भाग चेप युक्त (चिपचिपा) एवं झलकता हुआ सा दीखता है, जिस पर धूसर रोम या रज सा होता है तथा माथे पर गोल सछिद्र पर्दा या छत्र सा होता है (यह उक्त पुष्प के बाह्य कोष का भाग है जो कुछ मोटा सा होकर फल के माथे पर रह जाता है।) और उस पर भूरे वर्ण के रोये होते हैं।

परिपक्व होने पर लाल वर्ण का कुछ कलौंछ लिए हुए या जामुन जैसा काला हो जाता है। माथे पर का उक्त छत्र एक दम शुष्क और कड़ा हो जाता है। इस समय इसकी छाल इतनी मुलायम हो जाती है कि थोड़ा दबाते ही उसमें से कांजी जैसा रस और अन्दर का गूदा बाहर निकल आता है। गन्ध मछली जैसी स्वाद में मधुर हो जाती है। यदि ठीक ठीक न पका हो तो इसकी मिठास में कुछ खटास और कसैलापन रहता है।

उक्त गूदे के अन्दर भूरे रंग की कड़ी, अणीदार गुठली होती हैं। यह गुठली दोनों ओर से चपटी होती हैं। इसे तोड़ने पर अन्दर से एक बीज निकलता है।

बीज - गोलाकार, ऊपर और नीचे की ओर कुछ चिपटा रहता है। इसके ऊपर की छाल पतली तथा फीके बादामी रंग की होती है। उसे नाखून से खुरचने पर अन्दर रस भरा, तेलिया, श्वेत वर्ण का बीज दिखलाई देता है। इससे तेल निकाला जाता है, जो औषधि कार्य में बहुत उपयोगी है। बीज का व्यास1/4 इंच से 3/8 इन्च तक होता है। गन्ध उग्र होती है।

गुणधर्म-

आयुर्वेदानुसार-

किंचित् चरपरा, कसैला, तीक्ष्ण, कडुवा, उष्ण, स्निग्ध, पचने पर हल्का, दस्तावर तथा कृमि, शूल, आम, सूजन, ग्रहपीड़ा, बिसर्प, कफ पित्त, रुधिर विकार, स्थावर और जंगम विषों को दूर करता है।

फल—शीतल, स्वादिष्ट, पुष्टिकारक, भारी, बलबर्धक, दस्तावर तथा कफ, वात, पित्त, दाह, क्षय, रक्त विकारनाशक हैं और लूता (मकड़ी) आदि दोष एवं विषनाशक शुद्धिकारक हैं।

रस—वान्तिजनक, विष विकार, कफ, वातशूल, कृमि, सूजन, आम, पित्त, रुधिर विकार, विसर्प, स्थावर जंगम विष, कटिशूल, अतिसार और पिशाचपीड़ा नाशक है।

बीज—शीतल, धातुबर्धक, स्वादिष्ट, मंदाग्निकारक भारी, रस और पाक में मधुर, बलकारक, कफकारी, सारक, स्निग्ध, वीर्यवर्धक तथा दाह, वात, पित्त, क्षय, रक्तविकार, पित्त विकार और विसर्प को दूर करता है।

अर्क—शूल, आम सूजन, अंगग्रह और विषनाशक है। तैल वातकफनाशक तथा मालिश करने से चर्म रोग नाशक है। रसायन कार्य एवं पारद के रंजन कार्य में आता है।

नोट—आयुर्वेद के बंगसेन, चिकित्सासार आदि संग्रह ग्रन्थों में तथा अन्यान्य चिकित्सा ग्रन्थों में भी अतिसार संग्रहणी आदि रोगों पर अंकोल का व्यवहार देखा जाता है तथा निघण्टुकारों ने इसे रेची (दस्तावर) माना है। यह विरोधाभास केवल इसकी मात्रा के भेद से है। इसे यथोचित थोड़ी मात्रा में सेवन कराने से इसकी क्रिया पचन नलिका की श्लेष्मल त्वचा पर योग्य प्रमाण में होकर आमाशय और पित्ताशय की यथायोग्य क्रिया शक्ति बढ़ती है, ग्रहणी यन्त्र की पुष्टि होती है। तथा दूषित मल का शीघ्र ही निःसरण होकर अतिसार और संग्रहणी में लाभ होता है। इसीसे इसे श्री डल्हणाचार्य जी ने संग्रहणी लिखा है।

इसको बड़ी मात्रा में देने से यह अत्यधिक पित्तस्राव कराता है, तथा पित्त मिश्रिण जुलाब होने लग जाते हैं। या कफ पतला होकर वमन होने लगते हैं। इसी से इसे रेची, वामक और विषनाशक कहा गया है।

रासायनिक विश्लेषण - से मालूम हुआ है कि इसमें विशेषतः इसकी जड़ में एक तिक्त, रवा रहित क्षारीय तत्व है, जिसे अलेन्जीन (Alangine) कहते हैं। यह जल में नहीं घुलता है। इस क्षारीय सत्व के अतिरिक्त इसमें पोटेशियम क्लोराइड (Potassium Chloride) भी कुछ प्रमाण में रहता है। इसके रस को शरीर में इन्जेक्शन करने से वह रक्तचाप या ब्लडप्रेशर पर कुछ देर के लिये फायदा पहुँचाता है। रक्त की तेज रफ्तार को कम कर देता है।

प्रयोगांश- मूल, मूल की छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज, और तैल।

तैल निकालने की विधि-

अंकोल के बीजों का चूर्ण कर उसमें इतना तिल तेल मिलावें कि वह अच्छी तरह कीचड़ सा हो जाय। फिर उसे धूप में रख देवें। सूख जाने पर उसमें पुनः तिल का तैल मिला अच्छी तरह तर कर धूप में सुखावें। इस प्रकार 7 भावनायें तिल तैल की देने के पश्चात् एक चीनी के चौड़े मुख के पात्र पर कपड़ा कस कर उस कपड़े पर उक्त भावित बीज—चूर्ण को फैला कर रक्खें। उस पर एक श्वेत अबरक पत्र रख कर कोयलों की अग्नि रख दें। इस क्रिया से सब तैल टपक कर अन्दर पात्र में जावेगा। उसे शीशी में भर रक्खें।

उक्त प्रकार से तिल तैल की भावना न देते हुए वैसे ही बीजों का तैल उक्त विधि से ही निकालने का एक तरीका है, किन्तु उससे तैल ठीक ठीक नहीं निकलता किन्तु पाताल यंत्र द्वारा यह तैल बड़ी सुगमता से स्वच्छ सुनहरा पीतवर्ण का निकल आता है।

मुख्य प्रयोग -

(1) जलोदर, शोथ, ग्रंथि आदि पर -

इसकी जड़ के चूर्ण को 1½ मासा से 3 मासा तक की मात्रा में देने से पतले दस्त होकर यकृत के सुधार के साथ यकृदुदर, जलोदर और मूत्रपिण्डोदर पर भी लाभ होता है। इन विकारों में मूत्र का प्रमाण अधिक बढ़ाने के लिए काले तिल के पौधे का क्षार अथवा जवाखार की योजना इसके साथ कर देना आवश्यक है। इससे अजीर्णजन्य कोष्ठबद्धता और कृमिरोग में लाभ होता है। अथवा—

इसके मूल का रस या क्वाथ जितनी मात्रा में सहन हो सके उतना पिलाने से मूत्र साफ होने लगता है। तथा रोगी को आराम मालूम देता है।

ग्रंथी या गांठ - चाहे जैसी बड़ी हो, चाहे जैसी सख्त सूजन हो, चाहे प्लेग की हो या साधारण, इसकी जड़ को पानी में घिसकर उस गिल्टी पर 3—4 बार लेप कर देने से परम लाभ होता है।

साथ ही साथ इसके पत्तों को बांबी की मिट्टी के साथ कुचल पीसकर वस्त्र की पुटली में बांध कर सेंक करने

से और भी शीघ्र लाभ होता है।

(2) श्वास दमा रोग पर -

इसकी जड़ को नींबू के रस में घोटकर जब गाढ़ा घोल सा हो जाय तो छोटा चम्मच (चाय का) अर्ध प्रमाण में भर कर भोजन से दो घण्टे पूर्व प्रातः और सायं पिलाने से बहुत लाभ होता है। अथवा इसकी छाल, राई और लहसन तीनों 6–6 माशे खूब महीन कर उसमें तीन वर्ष का पुराना गुड़ सबके समभाग मिलाकर 1 गोली बनावें। रोगी को प्रथम दूध पिलाकर गोली खिलाने से अन्दर से पीड़ादायक कफ का गोला निकल पड़ता है। पुराना श्वास रोगी आराम की नींद लेता है। कभी दो या तीन गोलियाँ देनी पड़ती हैं। रोगी को घृत और चावल का पथ्य देना चाहिए। किन्तु यह प्रयोग बड़ी सावधानी से, स्नेह, स्वेदनादि कर्मों के बाद कराना श्रेयस्कर है।

(3) ज्वर, दाह, इन्फ्लुएञ्जा आदि पर -

जड़ की छाल का चूर्ण मात्रा 2½ रत्ती से 5 रत्ती जल के साथ खूब महीन कर पिलाने से पसीना आकर प्राकृतिक ज्वर (मौसमी ज्वर) में लाभ होता है। अरुचि दूर हो जाती है।

दाह युक्त ज्वर पर - इसकी जड़ और सोंठ को पानी में पीस कर, शरीर पर लेप करने से शीघ्र ही ज्वर और दाह की शांति होती है। यदि उसमें सोंठ न मिलाया जाय, केवल अंकोल मूल को ही या इसके फलों को पानी में पीसकर ज्वरावस्था में समस्त शरीर पर धीरे धीरे मला जावे तो भी लाभ होता है। छोटे बच्चों के शरीर पर यह इसी प्रकार लगाने से उनके ज्वरों की शांति हो जाती है।

जुकाम या संधियों में वेदना होकर आने वाले डेंगू ज्वर पर, इसकी मूल को बच या सोंठ के साथ चावल के माँड़ में पकाकर सेवन कराने से लाभ होता है। वेदना स्थान पर इसके पत्तों को पीस कर और गरम कर बांध देना चाहिए। इन्फ्युञ्जा पर भी लाभकारी है। अथवा–

इसकी जड़ 1 तोला, कूट और पीपल 3–3 माशे तथा बहेड़ा 6 माशे, इनका अष्टमांश क्वाथ बनाकर ठण्डा होने पर उसमें थोड़ी मिश्री मिला पिलाने से इन्फ्लुञ्जा या संक्रामक प्रतिश्याय पर परम लाभ होता है।

(4) अतिसार और संग्रहणी पर-

इसकी जड़ की छाल को छाया शुष्क कर, महीन चूर्ण तैयार कर मात्रा 4 रत्ती से 1 माशा तक तण्डुलोदक (चावल के धोवन) के साथ महीन पीस कर (तण्डुलोदक चौगुना लेवें) सेवन कराने से सब प्रकार के अतिसार और संग्रहणी में लाभ होता है। –चक्रदत्त

यदि उक्त प्रयोग में थोड़ा शहद मिला दिया जाय तो और भी उत्तम लाभ होता है। अतिसार के साथ ही साथ विष विकार भी दूर होते हैं।[1]

उक्त प्रयोग से पाचन क्रिया में सुधार होकर अतिसार आदि प्रायः कतिपय विकार नष्ट हो जाते हैं। कोई कोई इस प्रयोग में समभाग कुड़ा छाल का चूर्ण भी मिला देते हैं। दोनों चूर्ण समभाग कुल एक मासा के प्रमाण में लेकर तण्डुलोदक के साथ उक्त प्रकार सेवन कराने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

आमातिसार रोगी को इसके पत्तों का रस 6 माशे तक के प्रमाण में दूध के साथ पिलाने से प्रथम दस्त होकर, कोष्ठ शुद्धि होती है और अतिसार में लाभ होता है।

शास्त्रोक्त 'अंकोट वटक' नामक प्रयोग भी इस विकार पर प्रसिद्ध है।

(5) विष प्रतिकारार्थ -

विष चाहे जंगम हो या स्थावर अंकोल की मूल की छाल का रस बड़ों को 4 तोले और छोटों को 2 तोले की मात्रा में बार बार पिलाने से दस्त या वमन के द्वारा निकल जाता है।

खास प्रयोग -

सर्व विष पर - इसकी जड 1½ तोले कूट कर दो सेर जल में पकावें । 1½ पाव जल शेष रहने पर छानकर प्रति 15 मिनट पर 5–5 तोले की मात्रा में, गरम किये हुये समभाग गौघृत में मिला पिलाने से वमन और दस्तों द्वारा विष निकल जाता है।विष के उतर जाने पर 8 दिन तक नीम की अनतरछाल के क्वाथ में अंकोल मूल की छाल का चूर्ण 1½ माशे मिला प्रातः सायं पिलाते रहने से उसका सूक्ष्म अंश भी जाता रहता है।

श्वान विष पर पाँच प्रयोग –

(1)पागल कुत्ते के काटने पर इसके मूल की छाल को गौ दुग्ध के साथ पीसकर पिलाने से अथवा (2) इसके मूल के शीतक्वाथ में घृत मिलाकर पिलाने से, अथवा (3) मूल छाल का चूर्ण 1½ माशा में समभाग सुदर्शन चूर्ण मिला 2 मात्रायें कर प्रातः सायं दूध के साथ पिलाने से, अथवा (4) मूल छाल 3–4 तोले और काली मिर्च 7 दाने, इन दोनों को तक्र (मट्ठा) 10 तोले के साथ पीसकर पिलाने से वमन और विरेचन होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है। इसे 3 दिन तक प्रयोग करें। यही प्रयोग 'सर्प विष पर भी सफलतापूर्वक व्यवहृत किया जाता

1. "अंकोट मूल कलकश्च स क्षौद्रस्तण्डुलाम्बुना। अतिसारहरः प्रोक्तस्तथा विषहरः स्मृतः।" – शार्ंगधर

है। यदि दंशित व्यक्ति मूर्छित हो तो नौसादर, चूना, कपूर का उग्र वीर्य नस्य बनाकर सुंघावें और दांती खुलते ही इसको पिलादें। (पं0 उमादत्त जी आचार्य) अथवा – इसकी छाल को एक छटांक पानीके साथ 7 नग काली मिर्च मिला घोट छानकर पिलावें । यदि आवश्यकता हो तो 2–3 बार भी दे सकते हैं। यदि वमन में खून आने लगे तो उसके बाद दूसरा प्रयोग न करें। (5) इसके पत्तों को जल के साथ पीस छान कर उसमें काली मिर्च का चूर्ण मिला पिलाने से भी श्वान विष में लाभ होता है।

मूषिक विष - इसकी जड को जल के साथ पीसकर दिन में 2 बार पिलाने से चूहे का विष नष्ट हो जाता है तथा विकृत हुआ रक्त साफ हो जाता है । मूषिक विष का असर शरीर पर वात रक्त विकार जैसा प्रातः होता है। ऊपर से जहां शरीर पर चट्टे या लाल धारियां सी उठी हों वहां इसको घिसकर लगाना चाहिये। अथवा–

इसके मूल की छाल को बकरी के मूत्र में पीसकर पिलाने और इसी का लेप करने से चूहे का विष एवं तज्जन्य दाहादि विकारों से शांति होती है।

बिच्छू के डंक पर- इसकी जड की छाल जल में पीसकर दंश स्थान पर लेप करें। अथवा जल से घिसे हुए इसी लेप में सरसों का तैल मिला कान में डालने से बिच्छू का जहर शीघ्र नष्ट हो जाता है।[1]

मत्स्यदंश पर- इसके पत्तों की धूप देने से मछली के दंश पर आराम होता है ।

मामूली स्थावर विषों पर उपर्युक्त प्रयोग नं0 4 विशेष लाभदायक है।

विषैले अंजन से नेत्रों में अन्धता उत्पन्न होने पर इसके फूलों का अंजन लगाने से लाभ होता है।

गरविष – अर्थात उपविष सेवन जन्य उपद्रवों पर इसकी मूल छाल के क्वाथ का घनसत्व तैयार कर उचित मात्रा में गो घृत के साथ सेवन करावें, किन्तु इसके पूर्व रोगी के शरीर को तैल मर्दित कर स्वेदित कर लेना चाहिये ।शीघ्र लाभ होता है।

(6) खाज ब्रण आदि त्वग्रोगों पर -

(अ) इसके बीजों को मकोय के रस में पीस कर लेप करने से खाज, चट्टे आदि दूर होकर शरीर सुन्दर कांतियुक्त हो जाता है– वैद्य मनोरमा ।

(आ) इसके पत्तों को पीसकर टिकिया बना,सरसों तैल के साथ कडाही में डाल आग पर रख जला लें। जब जल जाय तो नीचे उतार कर उसमें थोडा काली मिर्च का चूर्ण मिला, खूब खरल करें। मलहम जैसा हो जाने पर इसे लगाने से सर्व प्रकार के ब्रण, खुजली, खरवा आदि अच्छे हो जाते हैं।

(इ) इसके बीजों का तेल 1 पाव और मोम 5 तोले इन दोनों को हल्की आंच पर गरम करें। जब दोनों एक रस हो जायें, तब उनमें भुना हुआ नीला थोथा लगभग दो माशे तक मिलाकर उतार लें। ठंडा होने पर चौडे मुंह की शीशी में भर लें। इस मरहम से खुजली, दाद, भगन्दर,नासूर फोडा, फुन्सी आदि त्वक् रोगों पर लाभ होता है।

(ई) बगल के नीचे या गले में महान कष्टदायक मर्मान्तक पीडायुक्त प्रायः वर्षा–ऋतु में जो फुडियां हो जाया करती है, उनके निवारणार्थ प्रारम्भ में ही प्रातःकाल इसका फल खिलाने तथा एक फल का पानी निकाल गिल्टियों पर मल देने से तुरन्त लाभ हो जाता है।

(उ) उपदंश के ब्रण या शीतपित्त के मण्डल या लाल वर्ण के चट्टे शरीर पर उठने पर इसकी मूल छाल चूर्ण की मात्रा आधी से 1 रत्ती तक दिन में 3 बार सेवन कराते हैं, और बीजों के तेल का अथवा इसकी जड को जल में पीस कर प्रलेप किया जाता है। इस प्रकार थोडी मात्रा में यह बहुत दिनों तक दिया जाता है। (डा0 देसाई)

(ऊ) **घाव पर-** यदि किसी शस्त्र से जख्म हो जाये तो इसके तेल में रुई भिगो कर उस पर रख दें और ऊपर से पट्टी बॉध दें। खून का बहाव बन्द होकर शीघ्र ही घाव अच्छा हो जाता है।

(ए) **चोट के दर्द पर-** इसके पत्तों को जल में उबाल कर उसकी भाप उस स्थान पर देने तथा उन पत्तों को गरमागरम बॉध देने से शीघ्र आराम होता है।

(ऐ) **चेचक के दागों पर** -इसका तेल, गैंहूँ का आटा और हल्दी इनमें थोडा पानी मिलाकर उबटन करने से लाभ होता है।

(7) कुष्ठ पर-

कुष्ठ विकार पर करंज और मदार की अपेक्षा अंकोल अत्यधिक लाभकारी है। इसकी मूल–छाल की मात्रा 1माशा तक जल के साथ पीस कर प्रातः सायं नित्य 6 माशा तक सेवन कराने तथा उसी छाल को जल में पीस ऊपर लगाने से बढा हुआ कुष्ठ एवं तज्जन्य शोथ और विशेषतः मंडल कुष्ठ में आशातीत लाभ होता है। शीघ्र ही स्पर्शहीन मंडल कुष्ठ में स्पर्श की अनुभूति होने लगती है।

अंकोल की मूल–छाल, जायफल, जावित्री और लौंग इनके समभाग चूर्ण को 2½ माशे की मात्रा में सेवन

1. अंकोल मूलस्य प्रलेपमाशु जलेन वृश्चीक विषं निहन्ति। कर्णे निषिक्तं सह सार्षपेन तैलेन तद्वच्छतोऽनुभूतग।। –भैषज्यसार

करने से कोढ का बढना रुक जाता है।

अंकोल के तेल में, शुद्ध पत्रा हरताल को घोट कर टिकिया बना हांडी में पीपल वृक्ष की छाल की राख भरकर, उस पर यह टिकिया रख, ऊपर से फिर राख को जमाकर ,बारह प्रहर की आंच देने से जो भस्म होती है वह कुष्ठ रोग पर परम लाभकारी है। रस रत्नाकर ग्रन्थ का 'अंकोलादि चूर्ण' भी कुष्ठ पर सेवन कराया जाता है ।

(8) प्रमेह निर्बलता आदि पर -

(अ) अंकोल पुष्प की कलियों को छाया शुष्क कर महीन चूर्ण कर रक्खें । इसकी मात्रा 5 रत्ती के साथ समभाग हल्दी और 1 माशा आमला चूर्ण मिला, शहद के साथ, प्रातः सायं सेवन करने से प्रमेहादि मूत्र सम्बन्धी विकार दूर होते हैं।

(आ) इसकी अन्तर छाल का चूर्ण शहद के साथ चाटकर, ऊपर से मिश्री मिला दूध पीने से प्रमेह एवं तज्जन्य कटिशूल आदि अन्यान्य शारीरिक वेदनायें दूर होकर पुष्टि प्राप्त होती है।

(इ) इसके तेल की 5 से 15 बूंदें ,मिश्री मिले हुए गर्म दूध में डाल कर कुछ दिनों सेवन करने से कमजोरी , सिर में चक्कर आना आदि प्रमेहजन्य विकार नष्ट होते हैं।

(9) अर्श पर -

मूल छाल चूर्ण 1 माशा में समभाग काली मिरच का चूर्ण मिला सेवन करें। और मस्सों पर इसके पत्तों की राख 1 तोला में, काली मिरच 25 नग, भुना नीलाथोथा 3 माशे और हरताल 1 माशा मिला खूब खरल करें। फिर इसमें मोम मिश्रित तिल तैल मिला खरल करें। मलहम जैसा हो जाने पर इसे लगाने से वे सूख कर झड़ जाते हैं।

(10) सिरदर्द पर -

जो किसी उपाय से दूर न हो तो इसके तैल की मात्रा 10 से 20 बूंद , बकरी के एक पाव दूध में थोड़ा शहद मिला पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। मस्तिष्क पुष्ट होता है।

(11) शहद और ताम्र भस्म -

अंकोल के योग से करने का विधान इस प्रकार है– अंकोल की जड़ के स्वरस में शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक समभाग को एक दिन खरल कर, भूधर यन्त्र में पुट द्वारा फूंक देने से पारद की भस्म हो जाती है। (रस रत्न) शुद्ध ताम्र चूर्ण या शुद्ध ताम्र के पैसे की अंकोल की मोटी जड़ में छेद कर उसके अन्दर रख, ऊपर से शुष्क अंकोल की छाल को दबाकर कपरौटी कर गजपुट में फूंक देने से श्वेत ताम्र भस्म होती है, ऐसा कहा गया है।

(12) आम्रादि बीज एवं वृक्ष वर्धनार्थ -

(के. आयुर्वेद महोपाध्याय शंकर शास्त्री पदे जी)

आम की गुठली को अंकोल तैल की 7 पर्ते देकर उसे जमीन में गाढ़ दें, और ऊपर से जल का सिंचन देते रहने से शीघ्र ही आम्र वृक्ष उग उठता है। इसी प्रकार अन्यान्य वृक्षों को भी शीघ्र उगाया जा सकता है।

अंकोल के पक्व फलों में वच का चूर्ण और शहद मिलाकर खूब कूट पीस कर जल में सबका मिश्रण कर इस जल से आम के पौधे को सींचने से वह शीघ्र ही बढ़कर फूलने फलने लग जाता है।

●